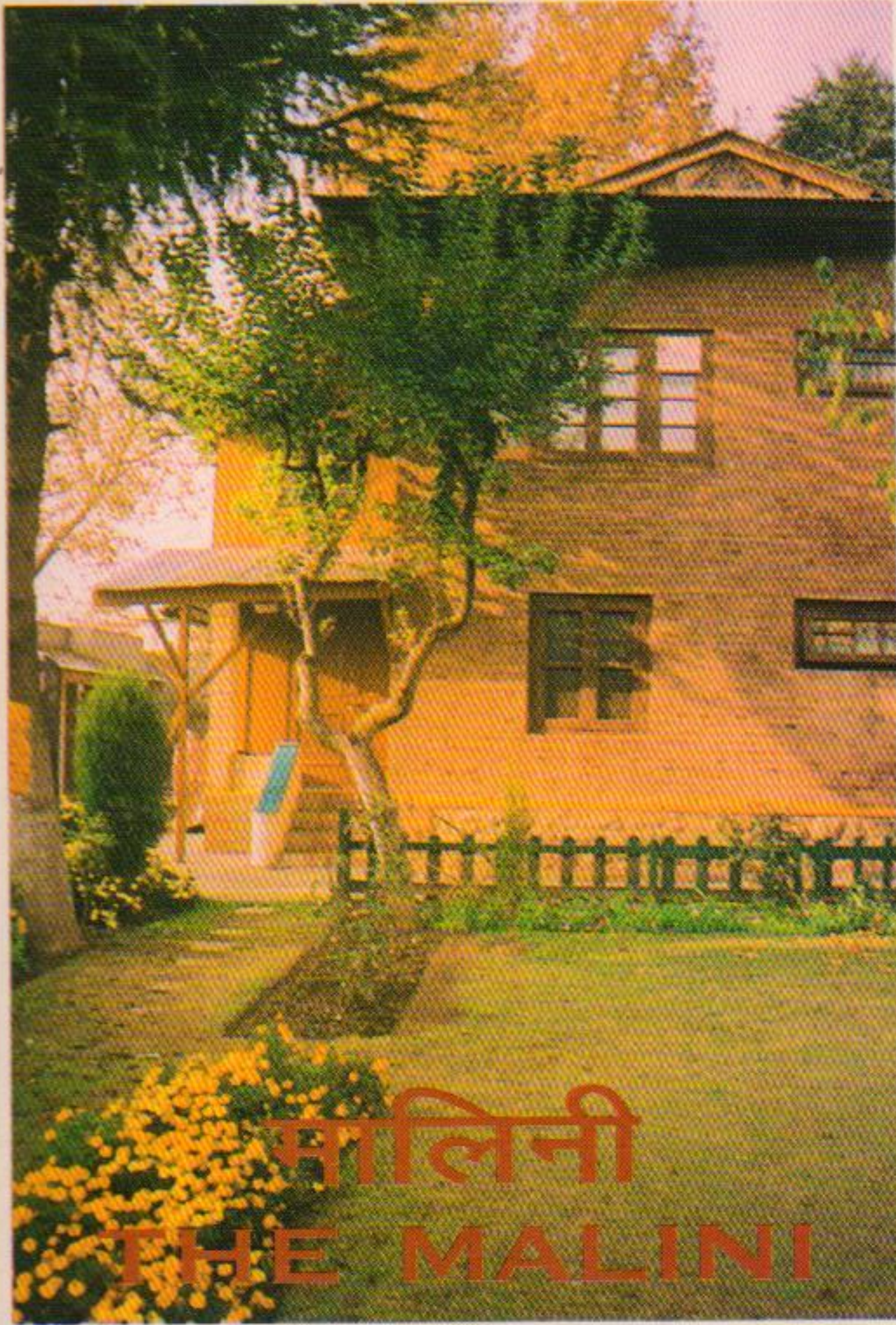


APRIL, 1997



ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR



मालिनी THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

*Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union
with her all the treatises of non-dualistic
order achieve the nature of divine potency.*

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :

Sri Inderkrishan Raina

(Secretary/Trustee)

Sri Samvit Prakash Dhar

Sri Brijnath Kaul

• Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :

Sushri Prabhadevi

Prof. Nilakanth Gurtoo

Pandit Jankinath Kaul 'Kamal'

Prof. Makhanlal Kukiloo

Sri Somnath Saproo

Sri Vijay Kumar Kaul

(Co-ordinator for

Delhi & Srinagar Branch)

Sri Brij Mohan

(Co-ordinator for Jammu Branch)

Publishers :

Ishwar Ashram Trust

Ishber (Nishat), Srinagar

Kashmir.

Administrative Office :

2-Mohinder Nagar

Canal Road

Jammu Tawi - 180002.

Tel. : 555755

Branch Office :

Ishwar Ashram Trust

Delhi Chapter

C/o Capt. Kachroo

J-77 Kalkaji, New Delhi - 110 019

Tel. : 6430226

April 1997

Price : Rs. 15.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust

by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

सम्पादक की लेखनी से		4
1. Kuṇḍalinī Vijñāna Rahasyam	<i>Svāmī Lakṣmaṇa Joo</i>	
	<i>Mahārāj</i>	7
2. Turīyā and Turīyātīta in Kashmir Śaivism	<i>Svāmī Lakṣmaṇa Joo</i>	
	<i>Mahārāj</i>	14
3. Kashmirian Origin of Mātrkā	<i>Dr. B. N. Pandit</i>	16
4. Vijñāna Bhairava and its Utility in Modern Era	<i>Dr. Koshalya Walli</i>	19
5. Sadguru Aṣṭottara Śatanāmāvalī Translation & Commentary	<i>Sh. Jankinath Kaul Kamal</i>	26
6. आचार्य अभिनवगुप्त 'रचित' अनुत्तराष्टिका का भाषानुवाद	सुश्री प्रभादेवी जी	29
7. शैवदर्शन के वातायन से	प्रो० नीलकंठ गुरुटू	32
8. अभ्यास' च ज़रम'स' तम रू० - जन्माष्टमी "साधना के आईने में"	सुश्री शारिका देवी जी	36
9. पथ लक्षण - आचार्य अभिनवगुप्त की दृष्टि में	सुश्री प्रभादेवी जी	38
10. सद्गुरु गाथामाला	प्रो० मखनलाल कुकिलू	43
11. From Ashram Desk	<i>Administrative Office</i>	46
	<i>2 Mohinder Nagar, Jammu</i>	

सम्पादक की लेखनी से

मालिनी के दूसरे वर्ष का अन्तिम अंक पाठकों के सामने बड़े उत्साह के साथ प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है। दो वर्षों की इस छोटी सी अवधि में, अनुकूल परिस्थितियों के अभाव में भी सुव्यवस्थित ढंग से मालिनी के विकास के लिए, पाठकगण धन्यवाद के पात्र हैं। यद्यपि इस बात को नकारा नहीं जाता है कि दार्शनिकता का क्षेत्र कंटीली झाड़ियों से समाच्छन्न होता है और इसमें फाल्गुनी त्योहार के रंगों का मिश्रण नहीं के बराबर होता है, फिर भी अपनी प्राचीन संस्कृति की थाती को संजोये हुए और उसकी मोहकता की ममता को त्यागे बिना इस क्षेत्र के प्रशस्त पथिक संकीर्ण मार्ग की कठिनाइयों को एक ओर करके आगे बढ़ने के लिए कटिबद्ध हैं। कश्मीर शैवदर्शन की महत्ता को इस तथ्य से आंका जाता है कि इसकी मूलच्छवि सिंधु घाटी सभ्यता के प्रागैतिहासिक काल में झांकी जाती है। इस दर्शन की प्राचीनता का बीज हजारों वर्षों से भारतीय संस्कृति की उर्वरधरा में रहा है। ऋषि दुर्वासा के मानस पुत्रों और मानसपुत्री के अप्रतिम दैवी सहयोग से तथा संगमादित्य के लौकिक स्तर पर प्रादुर्भूत होने से श्री सोमानन्द, आचार्य उत्पल देव, श्री वसुगुप्त, श्री शम्भुनाथ, श्री लक्ष्मणगुप्त और उनके प्रशंसनीय शिष्य अभिनवगुप्ताचार्य के अवतरित होने से इस दर्शन की सुरम्य घाटी की प्राकृतिक मोहक छटा चारों ओर अपनी सुरभि बिखेरने लगी। श्री पशुपतिनाथ से सपने में प्राप्त आदेशानुसार श्री वसुगुप्ताचार्य कश्मीर की सुरम्य घाटी में महादेव पर्वत की उपत्यका में शिलान्यास पर उत्कीर्ण सूत्रों को जनमानस में उकेर कर शिवसूत्रों की संज्ञा से उनका प्रचार व प्रसार करके इस अनमोल मोती को दर्शन साहित्य में भेंट कर बैठे। कश्मीर शैवदर्शन के महल की संरचना में इन शिवसूत्रों का अपना एक अलग विशेष स्थान है। इसके अतिरिक्त स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र ने भी इस महल में चार चांद लगाये। इस कश्मीर शैवदर्शन या त्रिकदर्शन की परम्परा में तीन उपायों शाम्भव, शाक्त और आणव को यौगिक साधना का अंगभूत मानकर स्वात्म साक्षात्कार के लिए उपादेय माना गया है। उपायत्रय-माला में शाम्भव उपाय को ही सर्वप्रधान और पेशलोपाय की संज्ञा दी गई है। इस शाम्भव उपाय को शैव योग के नाना साधनों से, जिन्हें शिवसूत्र, विज्ञानभैरव, मालिनी विजयोत्तर और परात्रिंशिका जैसे ग्रन्थों में विस्तार से समझाया गया है, अपनाया जा सकता है। इन नाना साधनों में मातृकायोग को अतीव सराहा गया है जिसकी व्याख्या आचार्य अभिनवगुप्त ने मालिनी विजय वार्तिक में विशदरूप से की है। पर दुर्लभ शास्त्र ज्ञान के साथ-साथ साधक के लिए

सद्गुरु अनुकम्पा का होना अनिवार्य है। इसके बिना जीवन का मूल अर्थ मूल लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता। इसी अनुकम्पा के लिए सुरमुनिगण इस भूलोक पर जन्म लेने के लिए लालायित होते हैं। सारे ब्रह्माण्ड की चेतना सद्गुरु महाराज स्वतः समाहित किये बैठे रहते हैं। अतः जीवनधर्म की अद्वितीयता को पाने के लिए हम सद्गुरुमहाराज की इस जन्म-जयन्ती पर उनकी शरण में जाकर अपने अहं के शमन के लिए उनसे अनुनय विनय करते हैं तथा स्मरण मात्र से ही हममें विद्यमान त्रिविध कालुष्य को मिटाने का अनुरोध करते हैं। सर्वातिशायी महत्ता के परिणामस्वरूप हमारे सद्गुरु महाराज का स्तवन रहस्यमयी प्रकृति की ज्ञानरश्मियां भी करती रहती हैं। परदुःखकातरता, अपराजेयता, कलात्मकता, अमोघशक्तिमत्ता, धीरता, गम्भीरता, करुणा, दया तपस्या आदि अभीष्ट गुणों की प्रतिमूर्ति हमारे सद्गुरुदेव, आज की जन्मजयन्ती महोत्सव पर, हमारे षट् कञ्चुक को हटा कर हमें पूर्णता और असीम पात्रता प्रदान करें और हमारे हृदय को ईश्वराश्रम जैसी पावनता से पुनीत बनावें।

अस्तु, अप्रतिम युग पुरुष अपने सद्गुरु महाराज के चरणकमलों में बार-बार नमन करते हुए अपने सभी गुरु भाइयों, गुरु बहिनों और गुरु भक्तों की ओर से उनसे नतमस्तक होके हम प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी त्रुटियों का निरन्तर परिशोधन व परिमार्जन करके सीमित मर्यादाओं और विसंगतियों से हमें उभारें और हमारी सारी योजनाओं में “निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्” जैसी भूमिका निभाने का आशीर्वाद दें।

इस अंक में जम्मू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग की भूतपूर्व अध्यक्षा डा० कौशल्य वल्ली का विज्ञान-भैरव जैसे आगम ग्रन्थ पर लिखा हुआ समीक्षात्मक लेख प्रकाशित किया जा रहा है। ‘मालिनी’ के लिए यह इनका पहला लेख है। विदुषी लेखिका संस्कृत साहित्य के साथ-साथ दर्शन शास्त्र की भी मर्मज्ञा है। इतना ही नहीं समाज सेविका के रूप में भी इनकी धाक बहुमुखी है। इनका त्यागमय जीवन अनुपम है। हमें आशा है कि डा० महोदया अब निरन्तर रूप से मालिनी के उपवन को अपने सद्विचाररूपी अनाघ्रात पुष्पों की महक से सुरभित करेंगी।

सारे भक्तजनों और गुरुभाइयों/बहिनों के अनुरोध पर मालिनी के जनवरी १९९७ अंक से सद्गुरु अष्टोत्तर शतनामावली के दस-दस नामों की विस्तृत व्याख्या अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हो रही है। शैवदर्शन व तन्त्र साहित्य के ज्ञाता व व्याख्याता आदरणीय जानकीनाथ

कौल 'कमल' ने जिस ढंग से नामावली के नामों की यह व्याख्या प्रस्तुत की है, वह सराहनीय है। सारे पाठकगण, विद्वान्‌व्याख्याता के इस उपकार से लाभान्वित होंगे, ऐसी पूर्ण आशा है। साधकों की भावनाओं व उनके अनुरोध को ध्यान में रखते हुए सद्गुरु महाराज की आगामी जन्मजयन्ती के उपलक्ष्य में इस अंक से ही सद्गुरु महाराज की जीवनी से संबन्धित महत्त्वपूर्ण घटनाओं को चित्रण करने का क्रम "सद्गुरु गाथा माला" शीर्षक लेख से आरंभ किया है। पाठकों/भक्तों/शिष्यों से निवेदन है कि इस विषय से सम्बन्धित जो भी या जितनी भी सामग्री उनके पास उपलब्ध हो, कृपया महेन्द्रनगर स्थित ईश्वर आश्रम में भेजकर कृतार्थ करें। इस अंक का यह लेख इस गाथामाला का पहला मनका है।

सद्गुरुदेव की इस जन्मजयन्ती पर हमारा यही लक्ष्य है कि हृदय को जाग्रत कर, श्रद्धा विश्वास और प्रेम में डूबकर, हम गुरुचरणों में पूर्णरूप से समर्पित हों और उनके कथन को अपने जीवन में शतशः उतारने में सक्षम हों।

जय गुरुदेव

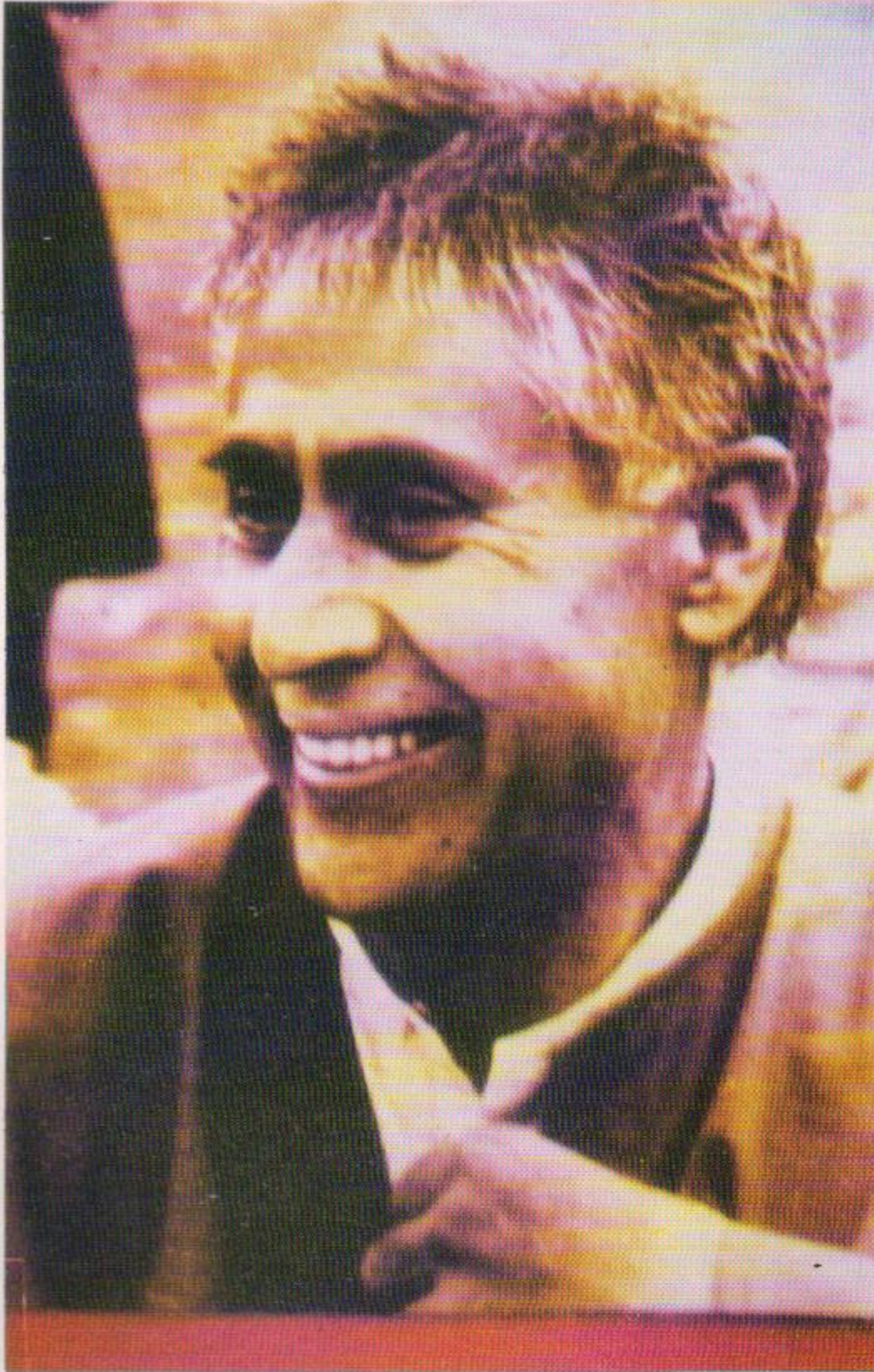
अप्रैल/मई १९९७

प्रो० मखनलाल कुकिलू

शास्त्रों में कहा गया है कि जो साधक/भक्त/शिष्य सद्गुरु के जन्मोत्सव पर गुरुपादुकापूजा में सम्मिलित होता है उसे सारे महोत्सवों पर की गई साधनाओं का फल और पुण्य स्वयं ही सहज में प्राप्त हो जाता है। क्योंकि यह दिवस पारलौकिक दिव्यता से पूर्ण होता है और अनन्त आशीर्वादों का उद्गम स्थान होता है।

(तन्त्रसाहित्य)

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज



आविर्भावदिवस

9-5-1907

महासमाधिदिवस

27-9-1991

कुण्डलिनीविज्ञानरहस्यम्॥ Kuṇḍalinīvijñāna Rahasyam

(Part V)

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāj

Continued from last issue

मन्त्रवेधं तु नादाख्यं बिन्दुवेधमतः परम्।

शाक्तं भुजङ्गवेधं तु परं षष्ठमुदाहृतम्॥

(Mantravedham tu nādākhyam bindurvedhamatah param
Śāktam bhujaṅga vedham tu param Ṣaṣṭhamudāhṛtam)

This Vedhadīkṣā - penetrating initiation is षष्ठमुदाहृतं - said to be six-fold मन्त्रवेधं तु - mantravedha is first, नादाख्यं - nāda vedha is second अतः परं - after that बिन्दुवेधं - bindu vedha is third, शाक्तं - Śākta vedha is fourth, भुजङ्गवेध - Bhujaṅga vedha is fifth and the sixth is पर - Supreme Vedha. All these six-fold penetrating initiations revealed in the 'Kulaguhvara Tantra', take place in Prāṇa Kuṇḍalinī and each reflect a different experience in the rise of Prāṇa. Kuṇḍalinī. The varieties of penetrating initiations come to the aspirant depending on his desires and longings.

वेधदीक्षा षट्कस्य स्वरूपमधस्तान्निर्दिश्यते—

मूलाधारचक्रादुत्थिता पूर्णाहन्तात्मकमन्त्रस्वरूपा प्राणकुण्डलिनी पूर्णाहन्ता-
बलात् समस्तानि चक्राणि वेधयन्ती आदिमा मन्त्रवेधदीक्षेति कथ्यते।

(Vedhadīkṣā Ṣaṭkasya Svarūpamadhastān nirdiśyate -
Mūlādhāra cakrādutthitā pūrṇāhantātmaka mantra svarūpā prāṇa-kuṇḍalinī
pūrṇā hantābalāt samastāni cakrāṇi vedhayanī ādhimā mantravedha dīkṣeti
kathyate.)

वेधदीक्षा षट्कस्य स्वरूपमधस्तात् निर्दिश्यते - These six ways of penetration of Kuṇḍalini will be explained as follows :-

मूलाधारचक्रात् उत्थिता - When from Mūlādhārācakra this Kuṇḍalinī rises, पूर्णाहन्तात्मक मन्त्रस्वरूपा - it takes the formation of मन्त्र such as अहं, सोऽहं, शिव, ॐ, all these mantras प्राणकुण्डलिनी पूर्णाहन्ता बलात् समस्तानि चक्राणि वेधयन्ती - By the power of पूर्णाहन्ता, Prāṇa Kuṇḍalinī penetrates all the cakaras by and by

from down to upwards. आदिमा मन्त्रदीक्षेति कथ्यते - this is nominated as Mantravedha dīkṣā the first piercing.

Thus Mantravedha is the first piercing where the yogi hears the sound of mantra. This kind of piercing takes place when the yogi intensely desires and longs for the recognition of Supreme I- Consciousness. In this case when Prāṇa Kuṇḍalinī rises, it takes the form of mantra and the yogi hears a mantra such as Om, Śiva, aham or So'ham. At the same time, he feels I am this Kuṇḍalinī - I am one with the Kuṇḍalinī. This is called mantra. His breath becomes full of bliss and this breath penetrates all the cakras. This kind of penetration is called Mantra-vedha.

मध्योर्ध्ववाहक्रमेण च प्रोच्छलन्ती नादाकारा सा द्वितीया नादवेधदीक्षेति कथ्यते।

(Madhyordhva vāha krameṇa ca procchalanṭī nādākārā sā dvitīyā nādavedha dīkṣeti kathyate)

'Nādavedha' is called second type of piercing. This piercing occurs when the yogi desires to uplift people. Here, when the breath touches मूलाधार चक्र it takes the formation of drum sound.

वीर्यस्वरूपा सा प्राणकुण्डलिनी समस्तं चक्रवर्गं वेधयन्ती तृतीया बिन्दुवेध दीक्षेति नाम्ना व्यपदिश्यते।

(Vīrya svarūpā sā Prāṇa Kuṇḍalinī samastam cakravargam vedhayanṭī tṛtīyā binduvedha dīkṣeti nāmna vyapadiśyate)

Third type of piercing is called Bindu-vedha. In Binduvedha blissful force of breath is transformed into a fountain of semen. The word बिन्दु means वीर्य (semen.) The yogi feels that it is a fountain of semen which is rising from मूलाधार चक्र to ब्रह्मरन्ध्र and spreading throughout his body. When the Kuṇḍalinī rises in बिन्दु वेध the yogi feels that sexual joy is nothing in comparison to the joy experienced in it.

शक्तिरूपतामापन्ना चक्रवेधनक्रियापरा सा तुर्या शाक्तवेधदीक्षा भवति।

(Śaktirūpatāmāpannā cakravedhanakriyāparā sā turyā śāktavedha - dīkṣā bhavati)

Fourth type of piercing is called Śākta vedha dīkṣā (शाक्तवेधदीक्षा). In this piercing an aspirant experiences the rise from मूलाधारचक्र to ब्रह्मरन्ध्र in the

form of an ant because that blissful force of breath is transformed into energy. This is the rise of energy in Kuṇḍalinī. It is called शक्तवेध because this kind of penetration in Prāṇa Kuṇḍalinī is filled with शक्ति (power).

सर्पाकारतामादधाना चक्रवेधनं च कुर्वाणा

व्युत्तिष्ठन्ती भुजङ्गवेधदीक्षा पञ्चमी।

(Sarpākāratāmādadadhānā cakra-vedhanam ca kurvāṇā vyuttiṣṭhantī bhujaṅga vedha dīkṣā pañcamī)

भुजंगवेध is fifth type of piercing. In this piercing when प्राणकुण्डलिनी is rising, the yogi feels that सर्पाकारतामादधाना- a serpent is rising and producing a serpent sound. In this case the rise of the blissful force of breath in the form of प्राणकुण्डलिनी takes the form of Cobra (भुजंग) and penetrates all these cakras upwards.

पराशक्तिरूपतामाश्रयन्ती समस्तचक्रवेधनशीला सा परवेधदीक्षा षष्ठीति।

(Parāśaktirūpatāmāśrayantī samasta cakra vedhanaśīlā sā paravedhadīkṣā ṣaṣṭhīti)

परवेधदीक्षा is Sixth type of piercing. This is Supreme Vedha. It is experienced by those who are always bent upon finding the Lord and nothing else. They are not interested in this universe they only want to surrender themselves completely to the Lord.

अथ पराकुण्डलिनी स्वरूपं विमृश्यते -

(Atha parā kuṇḍalinī svarūpaṁ vimṛśyate)

Now we will touch upon the experience of Supreme (परा) Kuṇḍalinī. How Parā Kuṇḍalinī is experienced.

परचितिरूपा विसर्गशक्तिः (Para Citirūpā Visarga Śaktih) the supreme creative energy, is one with Supreme consciousness, यदा अन्तर्भावौन्मुखरूपा (Yadā antarbhāvounmukhyarūpā) when it is directed towards Her internal nature (Svarūpa) अन्तः कोट्यात्मनिस्वरूपे स्वात्मानं चमत्कुर्वाणा (antah koṭyātmani svarūpe svātmānam camatkurvāṇā) where all movement ends, she there relishes Her true state - the fullness of I-Consciousness completely filled with God-Consciousness. पूर्णाहन्तात्मके पदे इदन्तासमावेशं तथेदन्तात्मके पदे पूर्णाहन्तायाः समावेशं कुर्वती समाधि व्युत्थान सामरस्यदायिनी क्रममुद्रारूपां जगदानन्दस्वरूपात्मिकां पराकुण्डलिनी दशां प्रकाशयति। (Pūrṇāhantātmake pade idantāsamāveśam

tathedantātmake pade pūrnāhantāyāh samāveśam kurvatī samādhi
vyutthāna sāmāsyadāyinīm kramamudrārūpām jagadānanda
svarūpātmikām parā kuṇḍalinī daśam prakāśayati) Then that I conscious-
ness is diluted in इदन्तासमावेशं - Consciousness of this. तथा - and इदन्तात्मके
पदे पूर्णाहन्तायाः समावेशं कुर्वती - Consciousness of this is diluted in I-
Consciousness. समाधि व्युत्थान सामरस्यदायिनी - and it produces oneness of
Samādhi and Vyutthāna - internal and external experience what to speak
of Her nature, what to speak of this world. They appear to be one with each
other. There is not slightest difference also. क्रममुद्रारूपां - This is the state
of Krama mudrā. जगदानन्द स्वरूपात्मिकां पराकुण्डलिनी दशां प्रकाशयति - This is the
state of Parā Kuṇḍalinī. This is the state of Jagad-ānanda.

जगदानन्दस्य लक्षणं श्री तन्त्रालोके यथा—

(Jagad-ānandasya lakṣaṇam Śrī Tantrāloke yathā) the definition of
Jagmta-ānanda is given in Tantrāloka in this way -

यत्र कोऽपि व्यवच्छेदो नास्ति यत् विश्वतः स्फुरत्।

यदनाहतसंवित्ति परमामृत बृंहितम्॥

(Yatra ko'pi vyavacchedo nāsti yat viśvataḥ sphurat
Yadanāhata samvitti paramāmṛta bṛmhitam)

यत्रास्ति भावनादीनां न मुख्या कापि संगतिः

तदेव जगदानन्दमस्मभ्यं शम्भुरूचिवान्॥

(Yatrāsti bhāvanādīnām na mukhyā kāpi samgatih
Tadeva jagadānandamasmabhyam Śambhurūcivān)

T.A.V-51-52

यत्र कोऽपि व्यवच्छेदो नास्ति - Where there is no destruction or where there
is no absence of bliss, यत् विश्वतः स्फुरत् - Where bliss is found shining from
all sides, यदनाहत संवित्ति परमामृत बृंहितं - Where it is universally strengthened
by the Supreme I Consciousness of God, यत्रास्ति भावनादीनां न मुख्या कापि संगतिः
- Where the six limbs of yoga - bhāvanā, dhāranā, dhyāna, pratyāhāra,
yoga, and Samādhi - are no longer used or required, तदेव जगदानन्दं अस्मभ्यं
शम्भुरूचिवान् - that state is Jagad-ānanada. Abhinavagupta says that his
master Śambhunātha had described all this about Jagadānanda to him.

अत्रापि स्वानुभवानुसारं मया किञ्चित् लिख्यते - (Atrāpi svānubhavānusāram mayā kiñcita likhyate). Now according to my own experience, I want to tell you something more about this.

तीव्रशक्तिपातभाजनस्य शिवयोगिनः प्राणा यदा सौषुम्ने मार्गे समाविशन्ति,
तदातस्य प्राणशक्तिर्मध्योर्ध्ववाहक्रमेण षट्चक्रवेधनक्रममस्पृष्ट्वैव
ब्रह्मरन्ध्रस्थानं आसाद्य चिदानन्दस्वरूपा भवति।

(Tivraśaktipātabhājanasya Śivayoginaḥ prāṇā yadā souṣumne mārge samāviśanti,
tadātasya prāṇaśaktirmadhyordhvavāha krameṇa Ṣaṭcakra vedhana kramam
asprṣṭvaiva brahmarandhrasthānam āsādy cidānanda svarūpā bhavati)

When a Śiva yogi has become worthy of the Supreme grace (तीव्रशक्तिपात) of Lord Śiva and when his प्राणशक्तिः (energy of breath) समाविशति - enters सौषुम्ने मार्गे - in the pathway of the central channel, षट्चक्रवेधन क्रमं अस्पृष्ट्वैव - it does not touch the six cakras that are found there, मध्योर्ध्ववाहक्रमेण ब्रह्मरन्ध्रस्थानं आसाद्य - rather it rises without the interruption of these six cakras, Just like fountain rising up to the thousand spoked cakra, चिदानन्दस्वरूपा भवति - and there it is filled with the bliss of God Consciousness. इत्थं तस्य योगिनः क्रममुद्रायां समावेशो जायते (Ittham tasya yoginaḥ kramamudrāyām samāveśo jāyate) thus this yogi experiences the state of Kramamudrā in and out. क्रमसूत्रेषु उक्तं (Kramasūtreṣu uktam) In Krama Sūtra it is said—

क्रममुद्रया अन्तःस्वरूपया बहिर्मुखसमाविष्टो भवति साधकः (Kramamudrayā antaḥ svarūpayā bahirmukha samāviṣṭo bhavati sādhanakḥ) In the krama mudrā a yogi first enters in the introverted state and enters into the outer external cycle of Consciousness. तत्रादौ बाह्यादन्तः प्रवेशः आभ्यन्तरात् बाह्यस्वरूपे प्रवेशः आवेशवशात् जायते (Tatrādau bāhyādantaḥ praveśaḥ ābhyantarāt bāhya svarūpe praveśaḥ āveśavaśāta jāyate) तत्रादौ बाह्यादन्तः प्रवेशः - first from out side he goes in. आभ्यन्तरात् बाह्यस्वरूपे प्रवेश आवेश - वशात् जायते - from inside he goes outside, and this movement of going in and out takes the position by the strength of समावेश (absorption) and not by the effort of yogi. इति सबाह्याभ्यन्तरोऽयं मुद्राक्रमः (iti sabāhyābhyantaro'ayaṁ mudrākramah) This is the state of going out and inside and then from inside to outside just to get this understanding that inside and outside are not different aspects but one, that is Kramamudrā किञ्च ईदृशीं समावेशदशामनुभवन् समावेश चमत्कृति बलादेव व्युत्थानेऽपि

समस्तं भावजातं चिद् गगने लीयमानं पश्यन् योगी यदा किञ्चित् व्युत्तिष्ठति, तदा तस्य सर्वाणि इन्द्रियाणि प्राणापान सहितानि क्षणं प्रादुर्भूय स्वात्मन्येव लीयन्ते (kiñca īdrśīm samāveśadaśāmanubhavana samāveśa camatkṛti balādeva vyutthāneapi samastam bhāvajātam cid gagane liyamānam paśyan yogi yadā kiñcita vyuttiṣṭhati tadā tasya sarvāṇīndriyāni prāṇapanasahitāni kṣṇam prādurbūya svātmanyeva liyante) किञ्च - One more point, ईदृशीं समावेशदशामनुभवन् - the one who experiences this state of Samāveśa (absorption) of krama mūdrā, व्युत्थानेऽपि समस्तं भावजातं चिद् गगने लीयमानं पश्यन् योगी यदा किञ्चित् किञ्चित् व्युत्तिष्ठति - experiences this whole universe melting into nothingness in the great sky of God Consciousness (चिद् गगन) तदा तस्य सर्वाणि इन्द्रियाणि प्राणापान सहितानि क्षणं प्रादुर्भूय स्वात्मन्येव लीयन्ते - Although he opens his eyes and perceives that everything is melting into that state. Yet when he tries to come out of that state, it becomes very difficult for him. because the intensity of God Consciousness does not let him Come out. Then for a moment (क्षणं) प्रादुर्भूय - he rises up स्वात्मन्येव लीयन्ते - and after that he again filled with intoxication rests inside. This happens again and again and this is called krama mudra.

इत्थं स हिण्डोल लीलावत् उभयतः प्रसरन्ती अन्तर्बहिः समावेशात्मिकां
दशामनुभवन्नेव पराकुण्डलिनीधाम प्रविशति

(Ittham sa hiṇḍolalīlāvata ubhayataḥ prasasantim antarbahiḥ samāveśātmikāṁ daśāmanubhavanneva parā Kuṇḍalinī dhāma praviśati)

It is just like the actions of a swing, swinging back and forth, one moment he comes out and in the next moment he rests in his own nature.

येन अस्य ऊर्ध्व कुण्डलिनीरूपायां क्रियाशक्तौ समावेशो जायते

(Yena asya ūrdhva kuṇḍalinīrūpāyām kriyāśaktau samāveśo jāyate)

By this process of Krama mūdrā, he experiences the state of समावेश of Supreme Kuṇḍalinī. यद्वशात् कौलयोगी अपि सिद्धयोगिनी संघट्टवेलायां निरञ्जन पदभाग् भवति (Yada vaśāt Kaulayogī api Siddha yoginī samghaṭṭa velāyām nirañjanpada bhāga bhavati) By that or by this समावेश the yogi of the kula system enters that state which is spotless, pure and nirañjana (without blemish.) Nirañjana - there are three states the first is Kāma tattva, the second is viśatattva and the third is nirañjana tattva. Kāma tattva is in desire, in energy of will. Viśatattva is in energy of knowledge and

Nirañjana is where there is no fear of death, no fear of going down. That is the pathway in Kriyā Śakti. “उक्तं हि-क्रियादेवी निरञ्जनम्” It is said that when you find out God in action that is निरञ्जन।

एवं कामकला रहस्याभिप्रायेण

(Evam kāmakalā rahasyābhiprāyeṇa)

so according to the statement of Kāmakalā,

कामतत्त्वं इच्छाशक्तौ, विषतत्त्वं ज्ञानशक्तौ,

निरञ्जनतत्त्वं च क्रियाशक्तौ अन्तर्भवन्ति।

(Kāma tattvam icchā śaktau, viṣatattvam jñāna śaktau,

Nirañjanatattvam ca kriyāśaktau antarbhavanti)

Kāma tattva will go in the energy of will, viṣa tattva resides in the energy of knowledge, and nirañjana tattva resides in the energy of action. When these three states are united with each other that is the state of भैरव।

तथा इच्छाशक्तिः शक्तिकुण्डलिनीति, ज्ञानशक्तिः प्राणकुण्डलिनीति,

क्रियाशक्तिः परा कुण्डलिनीति च तत्र तत्र शिवागमेषु व्यपदिश्यते।

(Tathā icchā Śaktiḥ Śakti Kuṇḍalinīti, jñāna Śaktiḥ prāṇa kuṇḍalinīti,

Kriyā Śaktiḥ parā kuṇḍalinīti ca tatra tatra Śivā gameṣu vyapdiśyate)

तथा - in the sameway शिवागमेषु - The divine Scriptures of our Śaivism. व्यपदिश्यते - explain that the इच्छाशक्तिः - the energy of will is शक्ति कुण्डलिनी (Śakti kuṇḍalinī). the energy of knowledge is ज्ञानशक्तिः (jñāna Śaktiḥ) is prāṇa Kuṇḍalinī and the energy of action - क्रियाशक्तिः (Kriyā Śaktiḥ) is parā Kuṇḍalinī.



“TURĪYĀ AND TURĪYĀTĪTA IN KASHMIR ŚAIVISM”

Svāmī Laksman Joo

Man is the only animal having a clear power of understanding. The nature has developed man in such a way that he is able to understand his own nature which is the Ultimate Nature Itself. As soon as one comes to ones senses, he starts a trial at understanding every thing coming his way, and his relation with that object. This is the start of his effort to understand his ownself. But his senses are limited due to his feelings of egoism, and its enveloping world, Due to these limitations he is conscious of only three states of his being i.e., Jāgrata (Wakefulness), Svapna (Dreamfulness) and Suṣupti (Sleepfulness). This means that he, being encircled by the materialistic World rolls in these three states only, forgetting his subjectivity, and living in the objective matter, he searches for eternal happiness in the matter alone.

Alas; he finds no real happiness in this matter, individually or collectively. As soon as one desire is fulfilled he yearns for something new, and in this way is no-where, after putting in all his efforts, because the efforts are directed only towards the outer materialistic World, and not towards his innerself.

Now the question would arise how to obtain everlasting happiness and how to get rid of this never-ending desire for the World of objectivity. To get out of this objectivity one must understand its nature. This objectivity is in reality of three types Viz : (1) External individual objectivity" this is "Jāgrata" - the state of Worldly Wakefulness. (2) Internal individual objectivity; this is "Svapna" - the state of Worldly dreamfulness; (3) "Individual objectivity without Consciousness thereof" - This is "Suṣupti" - the Worldly sleepfulness.

The World of materialistic desires, which is the root cause of sorrow, can be finished only when one understands the fourth and fifth state of understanding which can be understood by, searching them in only one's subjectivity and the relation of this subjectivity with objectivity.

The forth state called "Turīyā" is a state which can be realised within the above mentioned three states. Turīyā state may be named "Internal Individual Conscious Subjectivity" in English. Somewhere at the junction this fourth state does exist. This means that while passing from the "Jāgrat" state to "Svapna" or "Suṣupti" or vice-versa one does unconsciously pass through this state. As long as man does not develop the power to be alert and Conscious of this state of peacefulness, he does not understand it. This power can be developed by concentrating one's mind on subjectivity which can be practised (1) at the junctions of intake and offtake of respiration, (2) at the junction of the change of cognition from one object to another and (3) concentration on objectlessness.

To write in detail on these three ways of understanding volumes and volumes would be required. In short by establishing oneself in any one of these three ways, man can easily remain Conscious while passing through the three stages of "Jāgrat", "Svapna" and "Suṣupti", Beyond these three ways it is not possible at all to be Conscious of this state of Turīyā.

In technical pharalogy these three ways are called (1) Āṇavopāya (2) Śāktopāya and (3) Śāmbhavopāya

As for Turīyātīta the fifth state it is nothing but Turīyā the fourth state, very firmly established in such a way, that the person who has attained this state, is, eternal peace, bliss and happiness incarnate, and one with the World. In English this state may be named as "Internal Universal Conscious Subjectivity".

In short such a person realises, man, matter and their relation in their true perspective and lives as one with the Universal nature. "OM"

Courtesy :

*Ram Chander Raina of
2, Gogji Bagh, Srinagar (Kashmir)*



KASHMIRIAN ORIGIN OF MĀTRKĀ

Dr. B. N. Pandit

Continued from last issue

The peculiar type of Saivism, for which Kashmir is famous, entered there some time in the eighth century and developed as a distinct school of philosophy in the ninth century. But it appears that the tradition of the use of alphabet in theological practices of Siddhas was already prevalent there long before the development of Kashmir Saivism. It was adopted by Śaiva Siddhas to the system of worship with the help of bīja - mantras. The worship of Siva in the form of phallic figures and idols, the use of the repetition of Śivamantra, the tradition of worship with the help of bīja mantras and many other Tāntric traditions of sādhanā had become popular in Kashmir right from the pre-historic periods of history. The peculiar type of Kashmir Śaivism contributed a special type of theistic, monistic and absolutist philosophy of Śaivism to it and developed its elaborate Trika system of Tāntric theology. Both such elements, combined into one, are being known now as Kashmir Śaivism. It adopted many theological elements already prevalent among Śaivas and one of such highly important elements, which was of Tāntric origin, was the system of using letters and syllables as the targets of contemplative meditation. Siddha-mātrkā, the alphabet of Siddhas, was adopted by the authors of Kashmir Śaivism to their theology of the Trika system and it appeared there in the forms of Mātrkā, Mālinī and Bīja mantras. The word Mātrkā attained highest popularity in its use for an alphabet and manuscripts are even now known in Sanskrit as Mātrkāś, the works appearing in the written alphabetical form the word 'Bandulipi' belongs to the modern age. It was coined by scholars of this age to denote a manuscript. Its ancient name is Mātrkā which is thus more ancient than the appearance and growth of Kashmir Śaivism which adopted and popularized it in its practical aspect. The ancient Siddhas of Kashmir propagated it in the hoary past. Siddhas in other parts of India adopted it and it became thus the alphabet of Siddhas throughout the whole of India and continued to maintain such position at least up to the time of Śankarācārya and some generations of his followers. It spread in South East Asia in the early centuries of Christian era and continues there even now as the alphabet used in writing Tāntric mantras

of mystic character and in the system of meditation conducted with their help.

A coloured photograph of an idol of Fire god, "Vahni", established in a temple in Japan, appeared in 'Hindu Vishva' in its issue of April, 1977. The appearance of the idol is Tāntric in character. It bears the name of the deity written in Japanese and Sanskrit as 'Vadhan', a corrupted form of the word Vahni. Such form of the word reveals another Tamilian linguistic tradition evident in names like Raman, Krishnan etc. The name of the deity is written in two different scripts. In Japanese it is written in the script of that country, but in Sanskrit it is written in an Indian script the letters of which belong, without any doubt, to the Śāradā script of Kashmir as it is prevalent at present, though these are written vertically and not horizontally, in accordance with the Japanese system of writing. It proves that Siddhamātrkā, the alphabet of Siddhas, had reached upto Japan in the ancient times. The tradition of the use of Siddha-mātrkā in all religious matters must have been carried to such far away countries by such Buddhist monks who practised Zen yoga which is a corrupted form of Śāmbhavayoga of the Tāntrika Śaivism of Kashmir. Śāmbhavayoga in Kashmir Śaivism, being aided by the impression of the theistic absolutism of that school of Śaiva monism, leads a practitioner to the realization of the innermost nature of the self as it shines at the highest step of Turyā, the state of spontaneous self-revelation. But the same yoga practice, supported by the impressions of Buddhist nihilism, cannot lead beyond Apavedya-suṣupti, a state of deep sleep. That is the main difference between Śāmbhavayoga of the Trika system and the Zen yoga of the Buddhism of Japan. It was carried to Japan, China and Mongolia by a Buddhist monk of Tamilnadu who was named Bodhidharma. That explains the Tamilian influence visible in the name 'Vadhan'.

The Bīja mantras like Hrīm, Srīm, Klīm, Aim, Sauh etc. do not denote any conventional meaning based on saṅketa. The same is the fact with regard to the letters of Mātrkā and Mālinī. Such letters and syllables do not even indicate any thing through Lakṣaṇa, because the conditions necessary for its working do not arise there at all. Just as some peculiar sounds and their peculiar combinations, existing in poetic art, arouse certain feelings in a listener and illuminate certain poetic peculiarities like Madhura and Ojas Guṇas in him through the majestic power of such

sounds, known in Alaṅkāraśāstra as Vyañjanā-Vṛtti, so do the Bīja mantras, contemplated upon through some methods of Tāntric theology, reveal and illuminate certain aspects of pure I-consciousness, and arouse certain hidden spiritual powers in a practitioner.

Bīja mantras give rise to certain wonderful powers in a practitioner and fulfil his worldly wants in addition to leading him towards self-realization. These are commonly used by all sects and schools of Tāntrism. Māṭṛkā and Mālinī are the elements of higher yoga not known to all the Tāntric sects and schools. These are the special property of the Trika system of the Śaiva monism of Kashmir alone. A practitioner of Śāmbhavayoga, using the fifty letters and sounds of Māṭṛkā, realizes himself as the only existent infinite and pure I-consciousness, not egotic in character, but shining as an absolutistic self-awareness, bearing in it the manifestation of the whole phenomenal existence as a reflection of its own divine powers brought about by its own playful and divine will. He visualizes his divine powers as the sixteen vowel-sounds and letters from 'a' (अ) to 'ah' (अः) and discovers all the phenomenal tattvas from earth to Śakti, shining as the consonant sounds and letters from 'Ka' (क) to 'Kṣa' (क्ष). Such yogic practice to see one's pure I-consciousness as the absolute infinite reality beautified by the wonderful reflections of all phenomena, shining as identical with it, without even the slightest manifestation of diversity, is the Māṭṛkā yoga of Kashmir Śaivism. The ancient Śaiva siddhas of Kashmir discovered it, practised it, attained perfect success in its practice and taught it to curious aspirants without any restrictions based on caste, creed, sex etc. Siddhamāṭṛkā was already prevalent among ancient Siddhas in Kashmir, even before the elaborate development of the yoga of Māṭṛkā and Mālinī and was used in Tāntric sādhanā practised with the help of mystic syllables called Bīja-mantras. It had already been carried to other regions of Kashmir by such ancient Siddhas and had become popular with Tāntric practitioners in the South and Śaṅkarācārya practised such sādhanā in the 8th century A.D. Kashmir is thus the original home of the use of alphabet in the theological practices of Māṭṛkā, Mālinī and Bīja-mantras.



A Study of VIJÑĀNA BHAIKAVA & its utility in modern era

Dr. Koshalya Walli

My revered teacher Pt. Gopinath Kaviraja - a reputed International scholar of twentieth century would name Vijñāna-Bhairava as one of the three books he would love to read as many times as possible.

The word Vijñānabhairava connotes the knowledge of Śiva and Śakti. The work Vijñānabhairava deals with Anupāya i.e. 'Sahaja yoga'. The purpose of this book is to help a person reach the ultimate by means of Anupāya and be of service to humanity. Grace of Guru, the study of Śāstras and devoted to the discovery of The Ultimate, these are the qualities of a person who is eligible to have the study of the book Vijñānabhairava.

Āgama or Tantra Śāstra has innumerable branches or sub-branches. The work Vijñānabhairava is supposed to be concerned with Pratyabhijñā or Trika Sampradāya.

According to the Vijñānabhairava, the Power of the Ultimate is not separate from Him. Power and Powerful are always taken as one¹.

According to Vijñānabhairava, to concentrate between the eyebrows, one has to use one's fingers to press ears and eyes to witness the light. By meditating on this point of light, it (light) becomes one with the sphere of wisdom. A person of such practice gets established therein. This is called the manifestation of Parabhairava Svarūpa (परभैरव स्वरूप)².

Vijñānabhairava emphasises the point that wherever a person's mind goes, he should feel that the beauty he/she finds in an object or person, is basically, the beauty latent in his/her own self. By such practice he/she can

1. शक्तिशक्तिमत्तोर्यद्वदभेदः सर्वदा स्थितः।

अतस्तद्धर्मधर्मित्वात् पराशक्तिः परात्मनः॥ १८॥ वि० भै०

2. कररुद्धदृगस्त्रेण भ्रूभेदाद् द्वारोदधनात्।

दृष्टे बिन्दौ क्रमाल्लीने तन्मध्ये परमास्थितिः॥ ३६॥ वि० भै०

attain the highest bliss and realize that the world he sees is actually the projection of his/her own inner self³. Svachchanda-Tantra also says that one should think wherever the mind makes it to think, for everything is pervaded by Śiva⁴.

Man actually is that Cosmic Energy which is the terminology of Kashmir Śaivism, we call Parama Śiva. If a person's mind while living in this world is not having the impressions of his surroundings he is living in, he is established in himself and that is the highest state in life. This state of development is to be likened to the situation of a person who feeling sleepy does not get influenced by the surroundings. This situation is mid situation between the waking state and the state of dream. One is to practise to bring this state in one's consciousness when the external things despite being before him/one may appear to one as if not before one⁵. This very idea is latent in a Śloka quoted by pt. Vrajavallabha Dvivedī in his edition of Vijñānbhairava⁶.

For meditation, comfortable sitting posture is a Must. Vijñānbhairava draws our attention to this point when it is said that seat should be soft. Hands and feet should be left relaxed, so that the body experiences comfort in the sitting posture and mind, being devoid of fickleness and inertia, is established in calmness. A calm mind is full of bliss and perfect wisdom⁷.

Again, if a person concentrates on any gross object without moving

-
3. यत्र यत्र मनस्तुष्टिर्मनस्तत्रैव धारयेत्।
तत्र तत्र परानन्दस्वरूपं संप्रवर्तते॥ ७३॥ वि० भै०
 4. यत्र यत्र मनो याति ज्ञेयं तत्रैव चिन्तयेत्।
चलित्वा यास्यते कुत्र सर्वं शिवमयं यतः॥ स्व. तन्त्र ४/३१३
 5. अनागतायां निद्रायां प्रणष्टे बाह्यगोचरे।
सावस्था मनसा गम्या परा देवी प्रकाशते॥ ७४॥ वि० भै०
 6. निद्रादौ जागरस्यान्ते यो भाव उपजायते।
तं भावं भावयन् साक्षादक्षयानन्दमश्नुते॥ विज्ञान भैरव पृ० ८५
 7. मृदासेन स्फिजैकेन हस्तपादौ निराश्रयम्।
निधाय तत्प्रसङ्गेन परापूर्णा मतिर्भवेत्॥ ७७॥

the eyelids, his mind becomes introvert, detached from outer crutches. He shortly becomes devoid of various types of worries, becomes one with Śiva and identifies his own self with the self of one and all in the whole creation⁸.

“That there is no real essence of mind etc. in my body”- practising this type of attitude in every breath, there won't be any thought-current in such a person; his pure self consciousness will be manifest⁹.

Desires have no end. Soon after the satisfaction of one desire, another crops up. One should with alertness understanding the trick of desires - one following another-make every effort to resort to the moment of UNMESA i.e. when mind enters from one anxiety to another anxiety, that moment is known as Unmesa. In this moment of Unmesa both the worries should be done away with. In other words mind should be stabilized with the disappearance of the first desire. Consequently, another desire will not rise. Having, in this manner, bid good bye to the desires, one is established in one's Real Self That is Truth Consciousness & Bliss¹⁰.

When no desire takes place in a person, no craving for knowledge, no zest for action, at that moment the concerned person feels consciousness and bliss. By practising this methodology, he ultimately experiences that he is consciousness and bliss¹¹.

It is said as many people so many minds. When born in this world, it is very difficult to be devoid of desire, knowledge or action, Vijñānabhairava inspires us to concentrate on one point and have this firm conviction that all other is nothing but that Universal Cosmic Energy. Practising this firm conviction that all other is nothing but One Cosmic Energy, a person sees

8. स्थूलरूपस्य भावस्य स्तब्धां दृष्टिं निपात्य च।
अचिरेण निराधारं मनः कृत्वा शिवं व्रजेत्॥ ७९॥

9. चित्ताद्यन्तःकृतिर्नास्ति ममान्तर्भावयेदिति।
विकल्पानामभावेन विकल्पैरुज्झितो भवेत्॥ ९२॥

10. झगितीच्छां समुत्पन्नामवलोक्य शमं नयेत्।
यत एव समुद्भूता ततस्तत्रैव लीयते॥ ९४॥

11. यदा ममेच्छा नोत्पन्ना ज्ञानं वा कस्तदाऽस्मि वै।
तत्त्वतोऽहं तथाभूतस्तल्लीनस्तन्मना भवेत्॥ ९५॥

one's own self in everything, and, gets identified with Supreme Wisdom, Consciousness and Bliss¹².

That everything we see and hear is not the virtual truth. Whatever knowledge we gain by our senses, it is not with any solid base. Ultimately, everything is nothing but the projection and production of the Source-projection and production of the Source-Consciousness. Firmly visualising this truth, experiencing it in the practical laboratory of life, one becomes Śiva i.e. Cosmic Energy¹³.

Theoretically, academically or from the viewpoint of scholarship, one may repeat that Eternal Consciousness is Everything. Nothing exists beyond that; but in real practical life, dealing with domestic, social official, political, economical problems, one has to be wise, alert, cautious. The daily work is to be done with firm faith that in every creature right from an ant to human being, there is no main difference. Hence, everything is consciousness. Consciousness is uniform everywhere but bodies differ. Experiencing Consciousness everywhere, one crosses the worldly ocean otherwise difficult to be crossed. Such person experiences every form as his own form and realizes the Ultimate¹⁴.

Although this whole world looks in the form of the Receiver and received; but, when we think about it with an intellect transformed on the basis of knowledge and experience, all this looks like magic formed out of Māyā or like a painting painted on paper or on cloth; or like standing trees appearing like moving when one is in a moving boat or Bus. Having true knowledge of the actual position, a person concentrates on that and gets eternal happiness¹⁵.

12. इच्छायामथवा ज्ञाने जाते चित्तं निवेशयेत्।

आत्मबुद्ध्याऽनन्यचेतास्ततस्तत्त्वार्थदर्शनम्॥ ९६॥

13. निर्निमित्तं भवेज्ज्ञानं निराधारं भ्रमात्मकम्।

तत्त्वतः कस्यचिन्नैतदेवंभावी शिवः प्रिये॥ ९७॥

14. चिद्धर्मा सर्वदेहेषु विशेषो नास्ति कुत्रचित्।

अतश्च तन्मयं सर्वं भावयन् भवजिज्जनः॥ ९८॥

15. इन्द्रजालमयं विश्वं न्यस्तं वा चित्रकर्मवत्।

भ्रमद्धा ध्यायतः सर्वं पश्यतश्च सुखोद्गमः॥ ९९॥

Man is not to be affected either by happiness or by sorrow. The element that stays between happiness and sorrow is known as cit, caitanya. That cit is to be meditated upon; one-pointed attention is to be given to that consciousness that is Śiva or Bhairava¹⁶.

To know the ultimate Truth, a person has to give up the attachment with his body and adopt an attitude, "I am everywhere". Holding on to this attitude with firm faith and an incessant practice, without thinking for anything else, one becomes happy, takes the whole world as one's body¹⁷.

A Practiser of the path of Truth, always remembers his form of Consciousness and is not swayed by the wave of Receiver and the Received. He is always mindful of this fact that he is in reality Effulgence and Consciousness and not the ephemeral body. He is eternal and different from what is transitory¹⁸.

One should visualise the flow of consciousness in other bodies also. Giving up the feeling of attachment with one's own body, one should feel- "I am consciousness and pervade the whole world. Thus the whole world is my body."

Faithful and constant practice of this attitude makes one all-pervading after a short span of time¹⁹.

Mind is to be made without any basis-external or internal and no thought current is to be entertained thereafter. Practice of such attitude leads one to the ultimate Goal i.e. Bhairava Svarūpa or Parama Śivatva. Attainment of this goal demands ceaseless practice of holding on to the

16. न चित्तं निक्षिपेद् दुःखे न सुखे वा परिक्षिपेत्।
भैरवि ज्ञायतां मध्ये किं तत्त्वमवशिष्यते॥ १०१॥

17. विहाय निजदेहस्थां सर्वत्रास्मीति भावयन्।
दृढेन मनसा दृष्ट्या नान्येक्षण्या सुखी भवेत्॥ १०२॥

18. ग्राह्यग्राहकसंवित्तिः सामान्या सर्वदेहिनाम्।
योगिनां तु विशेषोऽयं संबन्धे सावधानता॥ १०४॥

19. स्ववदन्यशरीरेऽपि संवित्तिमनुभावयेत्।
अपेक्षां स्वशरीरस्य त्यक्त्वा व्यापी दिनैर्भवेत्॥ १०५॥

said attitude²⁰.

By firmly believing that God is Omniscient, Omnipotent and Omnipresent; I am the same and holding on to this firm conviction with constant practice in everyday life in every breath, one becomes one with Parama Śiva²¹.

A practiser, sincere practiser of Vijñāna-bhairava adopts an attitude like—"Just as waves rise from water, flames originate from fire, rays from sun, likewise all the activities of the world emanate from the Self that is designated in the terminology of Vijñāna-bhairav as Bhairava²².

That Cosmic Energy is the source of samakalpa-oriented mind, conscious intellect, life-giving power and with these three ingrained soul (experient). When a practiser experiences these four as wonders of Consciousness (citi), then manifests in him/her the real/original form of Parama Śiva. In other words, when a practiser experienced the above said four situations as the projection of Māyā; all the four situations give way on the basis of the nothingness of Māyā. What remains is Consciousness (Citi). Under the given circumstances, a practiser, when becomes free from the various types of veil of Māyā, is enlightened with the light of (Citi) Consciousness like sun that shines when it is free from the veil of fog. In other words, incessant practice of this attitude transforms a practiser into Parama Śiva²³.

Thus, to be brief, to attain the state of Parama Śiva, Vijñānabhairava presents to the desirous and deserving human beings one hundred and twelve Dhāraṇās. A sincere seeker of Truth, if catches hold of one single

20. निराधारं मनः कृत्वा विकल्पान्न विकल्पयेत्।

तदात्मपरमात्मत्वे भैरवो मृगलोचने॥ १०६॥

21. सर्वज्ञः सर्वकर्ता व्यापकः परमेश्वरः।

स एवाहं शैवधर्मा इति दार्ढ्याच्छवो भवेत्॥ १०७॥

22. जलस्येवोर्मयो वह्नेर्ज्वालाभङ्ग्यः प्रभा रवेः।

ममैव भैरवस्यैता विश्वभङ्ग्यो विभेदिताः॥ १०८॥

23. मानं चेतना शक्तिरात्मा चेति चतुष्टयम्।

यथा प्रिये परिक्षीणं तथा तद्भैरवं वपुः॥ १३५॥

Dhāraṇā to meditate on it, he discovers his true self.

In this age of restlessness, misunderstandings, mistrust, deceit, cut-throat competition, a sincere reader of Vijñānabhairava can transform himself/herself and his or her transformation will surely transform others. An iota of sincere practice is equal to tons of mere theories. Vibrations of a sincere and true human being work wonders.

Thus Vijñānabhairava is one of the significant works on yoga Śāstra. Ācārya Abhinavagupta calls this book as Āgama, Śiva Vijñānopaniṣad and Rudrayāmala. Yogarāja, the commentator of Paramārtha-sāra of Abhinavaguptācārya, calls it Śaivopaniṣad. Kṣemarāja refers to this book with respect.

The Vijñānabhairava comprises one hundred and sixtyone ślokaś. The work Vijñānabhairava makes us understand the significance of Śiva and Śakti. Just as fire and its power of burning are not separate, likewise Śiva and Parā Śakti are not different. Just as power of burning recognizes fire, similarly Parā Śakti helps us to understand Parama Śiva. Śakti gives us the knowledge of Śiva, as sun's effulgence helps us to know the various directions.

Vijñānabhairava helps citta in being steadfast in itself. This work can aptly be called the topmost collection of shining diamonds. This work transforms the tendencies of attachment.

The book Vijñānabhairava makes us feel that a human being is neither flesh, nor blood nor bones; neither mind, nor intellect nor limited ego. He/she in originality is the Source of Energy that makes one to breathe, walk, talk, live and let live. The moment one recognizes his/her original energy and identifies himself/herself with it, he/she attains the main object of life. Such one finds the whole cosmos own projection and feels pain to see the distressed and cannot remain without helping the distressed. Such one is all Divine Love and above jealousy, illwill, dishonour, honour. Admiration does not inflate him, disrespect and condemnation do not discourage him. He enjoys the play. He knows Svātantrya and its role, lives Truth, Consciousness and Bliss.

Personalities like the abovesaid are in dire demand by the present day

human society. Modern society suffers from various ailments in all the arenas-domestic, social, official, economical and political. Social service has become fobia, fashion, despite the fact that humanity very urgently seeks social servants, but we have to transform ourselves before we deserve to be the social servants. The book Vijñānabhairava serves as an apt teacher and guide to show us the way.



SADGURU AṢṬOTARAŚATANĀMĀVALĪ

Composed by: Prof. Makhanlal Kukiloo

Transliteration, translation and comm. by Jankinath Kaul 'Kamal'.

Continued from last issue

११. प्रद्युम्नपीठस्य महेश्वर

(Pradyumna pīthasya maheśvara)

Lord of the Pradyumna pītha, the exalted divine seat. Kashmir, where the nature is at Her best, is the selected special abode of the Supreme Deity, who is adored at the Hari Parvat Hill in Kashmir, as glory and grace of Vāmadeva-Śiva. This abode is named Pradyumna Pītha - the seat of the god of love. Svāmī Lakṣmaṇa Joo was an embodiment of that divine love. Looking at him, made one's mind still. Sitting near him was itself a deep spiritual education. Falling within the sphere of his beatific vision was to be inworldly elevated.

१२. सर्वान्तरस्थ भूतेश्वर

(Sarvāntarastha Bhūteśvara)

The indeweller lord of all creatures. Purity and spiritual lustre that emanated from the very being of Lakṣmaṇa Joo, seemed to rule the hearts of his devotees. May, whoever came to him, felt very much drawn towards him.

१३. अमराभिवन्द्योऽमरेश्वर

(*Amarābhivandyo'mareśvara*)

The lord of immortal beings, given respectful salutation by his own unfailing powers.

Guru Lakṣmaṇa was the lord of his senses which obeyed him miraculously in being absorbed in his Supreme Self.

१४. ज्वालेष्टदेव्या दत्ताभय

(*Jvāleṣṭadevyā dattābhaya*)

Who is conferred the boon of fearlessness by his chosen deity Jvālā Bhagavati.

The chosen or family deity of Svāmī Lakṣmaṇa Joo is Jvālā Bhagavati (Khrew, kashmiri). Svāmī Ji was so much devoted to the deity that he was granted the favour of fearless attitude towards all distracting agencies of ignorance.

१५. देवाधिदेव भवान्तक

(*Devādhideva Bhavāntaka*)

The supreme effulgence that removes all kind of worldliness.

The shining glory that adorned Lakṣmaṇa Joo removed every kind of limitation or narrow-mindedness while being in his presence. His relationship was both human and spiritual.

१६. संवित्स्वरूपविलक्षण

(*Samvitsvarūpa Vilakṣaṇa*)

The perceptual Consciousness that has no mark of distinction.

The perceptual Consciousness of Lakṣmaṇa, the possessor of auspicious marks is so vast and infinite that it speaks of no distinction that could bring it to limitation.

१७. हृत्पद्मसूर्यविश्रान्तिद

(*Hṛtpadmasūrya-Viśrāntida*)

The sun of the blossomed heart-lotus that gives tranquil repose.

Guru Lakṣmaṇa's heart, filled with divine love, gave repose to the aspirations of his devotees. No words can describe the experience derived from his glorious presence.

१८. समस्तशैवागमपारग

(*Samasta Śaivāgama-pāraga*)

One adept in all the Āgama Śāstras that explain the Supreme Śiva.

Śaivācārya Īśvarasvarūpa Sri Svami Lakṣmaṇa Joo had mastered all the spiritual injunctions regarding Śaiva Tantras that pertain to Supreme Śiva. He had over-all knowledge of Supreme-Consciousness.

१९. प्रसन्नधामामृतमोक्षद

(*Prasannadhāmāmṛta-mokṣada*)

Giver of liberation at the cheerful seat of immortality.

Sitting in the very presence of Guru Lakṣmaṇa gave practical experience of immortal liberation one felt so cheerful with him that one forgot all other thoughts which his mind could take away from the blissful situation.

२०. रम्य हृदय परन्तप

(*Ramya-hṛdya-parantapa*)

The pleasing, charming and destroyer of enemies.

It was pleasing to be with Guru-Lakṣmana always and everytime. One got peace where all inimical tendencies were totally put off.



श्रीमदाचार्याभिनवगुप्त द्वारा रचित अनुत्तर-अष्टिका का भाषानुवाद

सुश्री प्रभादेवीजी

श्री मालिनीविजयवार्तिक, परात्रिंशिका विवृति, ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विवृति विमर्शिनी, परमार्थसार, तन्त्रालोक और तन्त्रसार जैसे विशालकाय ग्रन्थों के रचयिता होने के साथ साथ शैवकेसरी आचार्य अभिनवगुप्त कई छोटपुट रचनाओं को भी रचकर विख्यात हुए। इन रचनाओं का भी अपना एक महत्व है। इन में कश्मीर शैव दर्शन के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का निरूपण सरल शब्दों में जिस रीति से किया गया है वह इनकी अपूर्व विद्वत्ता को जतलाता है। प्रस्तुत रचना यद्यपि केवल आठ श्लोकों की है पर भावगाम्भीर्य इसमें अनुपम है। हमारे सद्गुरु महाराज को अनुत्तराष्टिका के ये आठ श्लोक अतीव प्रिय थे। वे समय समय पर इन्हें दुहराकर आनन्दमग्न होते थे। इसीलिए 'मालिनी' के पहले अंक में गुरुमहाराज ने इन श्लोकों का प्रकाशन करवाया था। सर्वसाधारण के लिए परमोपयोगी इन आठ श्लोकों का भाषानुवाद करके विदुषी साधिका ने भक्तों की चिरकालीन इच्छा पूर्ण की। हमें आशा है कि शैवशास्त्रज्ञा माननीया लेखिका आचार्य अभिनवगुप्त की चिरप्रतीक्ष्य अन्य फुटकल रचनाओं, परमार्थ-चर्चा, परमार्थ द्वादशिका, महोपदेशविंशतिका, क्रमस्तोत्रं (प्रकाशित क्रमस्तोत्र से भिन्न) अनुभवनिवेदनम्, रहस्य पञ्चदशिका आदि का सरल भाषानुवाद करके सभी जिज्ञासुओं की जिज्ञासा को शान्त करके कृतकृत्य करेगी।

प्र० सम्पादक

सङ्क्रामोऽत्र न भावना न च कथा युक्तिर्न चर्चा न च
ध्यानं वा न च धारणा न च जपाभ्यास प्रयासो न च।
तत् किं नाम सुनिश्चितं वद परं, सत्यं, च तच्छ्रूयतां
न त्यागी न परिग्रही भज सुखं सर्वं यथावस्थितः॥ १॥

इस अनुत्तर-धाम में पहुँचने के लिए, न सङ्क्रमण की, न भावना, न भगवत्कथा-वार्त्ता, न शास्त्र-युक्ति (उपाय) और न ही पारमार्थिक चर्चा की आवश्यकता है। ध्यान, धारणा, जप, अभ्यास का प्रयास भी नहीं करना है। तब फिर आप विचार करके उस परम सत्य को जताइये (वह कैसे प्राप्य है) सुनिये—इस को प्राप्त करने के लिए न तो (विषयों का) त्याग करना है और न ही किसी साधना या किसी वस्तु को ग्रहण करने की अपेक्षा है। जो जैसा हो रहा है—यथापूर्वक हो रहा है—इसी धारणा को देखते हुए विमर्श करते हुए आत्मिक सुख-आत्म-लाभ का सेवन (चर्वण) करो।

संसारोऽस्ति न तत्त्वतस्तनुभृतां बन्धस्य वार्त्तैव का
बन्धो यस्य न जातु तस्य वितथा मुक्तस्य मुक्ति क्रिया।

मिथ्यामोहकृदेष रज्जुभुजगच्छायापिशाचभ्रमो

मा किञ्चित् त्यज मा गृहाण विलस स्वस्थो यथावस्थितः॥ २॥

सच मानिये—जीवधारियों को संसार है ही नहीं। जब संसार नहीं है तो बन्धन की वार्ता ही क्या है? मानिये यदि जीव बन्धन में फंस गया तो उस से वह कभी भी छूट नहीं सकता। मुक्तात्मा को मुक्त बनने की क्रिया (उपाय) करना भी निष्प्रयोजन है। बात तो यह है—यह सभी बन्धन, मुक्ति आदि की भावना-व्यर्थ के मोह द्वारा उत्पादित रस्सी पर सांप का भ्रम होना या छाया को देखकर पिशाच (राक्षस) के भ्रम की भांति आभास-मात्र है। गुरु-युक्ति यह है कि—न मुक्त बनने के लिए कुछ छोड़ना है, न कुछ पकड़ना है। अपनी चेतना में स्थिर स्वस्थ बनकर, जो कुछ हो रहा है ठीक हो रहा है—इसे विमर्श करते हुए सभी विलास (व्यवहार) करो।

पूजापूजकपूज्यभेदसरणिः केयं कथानुत्तरे

सङ्क्रामः किल कस्य केन विदधे को वा प्रवेश क्रमः।

मायेयं न चिदद्वयात् परतया भिन्नाप्यहो वर्तते

सर्वं स्वानुभवस्वभावविमलं चिन्तां वृथा मा कृथा॥ ३॥

पूजा, पूजा करने वाला तथा पूज्य देवता की जो भेदात्मक सरणि (मार्ग) है—इनकी वार्ता ही अनुत्तर में क्यों करें। बात तो यह है—किसने कैसे क्यों इसमें प्रवेश करना है या इस से छूटना है यह बात ही नहीं है। तुम कहते हो—यह माया है, वह माया भी अद्वैत चित्-प्रकाश के बिना या उससे भिन्न होकर ठहर ही नहीं सकती। यह सभी (उपाय-क्रम) निर्मल स्वात्मानुभव रूप ही है। फिर व्यर्थ चिन्ता ही क्यों करते हो।

आनन्दोऽत्र न वित्तमद्यमदवन्नैवाङ्गनासंगवद्

दीपार्केन्दुकृतप्रभाप्रकरवन्नैवप्रकाशोदयः।

हर्षं संभृतभेदमुक्तिसुखभूर्भारावतारोपमः

सर्वद्वैतपदस्य विस्मृतनिधेः प्राप्तिः प्रकाशोदयः॥ ४॥

यह स्वात्मानन्द, धन या मदिरा से मस्त बनकर या स्त्री द्वारा, प्राप्त सुख से प्राप्य नहीं होता। यह स्वात्म-प्रकाश, दीपक, सूर्य या चांद की प्रभा-किरणों से प्रकाशित नहीं होता। हर्ष को प्राप्त करके, भेद-प्रथा से मुक्त होकर हम सुखी होंगे—यह भी कल्पना का बोझ ही है। सच तो यह है कि विस्मृत-निधि-सांसारिक सुख भोग के संकल्प विकल्पों को भी विस्मृति की खाई में डालने का खजाना जो अद्वैत अवस्था है अर्थात् जहां संकल्प-विकल्पों

की इति होती है, उस की प्राप्ति ही प्रकाश का उदय है।

रागद्वेषसुखासुखोदयलयाहङ्कार दैन्यादयो

ये भावाः प्रविभान्ति विश्ववपुषो भिन्नस्वभावा न ते।

व्यक्तिं पश्यसि यस्य यस्य सहसा तत्तत्तदेकात्मता

संविद्रूपमवेक्ष्य किं न रमसे तद्भावनानिर्भरः॥ ५॥

राग, द्वेष, सुख, दुःख, उत्पत्ति संहार, अहंकार दीनता आदि भाव जो दीखने में आते हैं वे जगद्रूप स्वात्मा से अलग नहीं हैं अर्थात् ये विश्वस्वरूप स्वात्मा का ही निजी (अपना) स्वभाव है, उससे भिन्न नहीं है। (मानव) जिस जिस रूप को सहसा देखकर, उससे एकमेक हो जाते हैं, उन सभी को संवित् रूप ही देखते हुए तथा उसी भावना पर निर्भर होकर क्यों नहीं रमण (जागतिक) व्यवहार करते।

पूर्वाभावभवक्रिया हि सहसा भावाः सदास्मिन् भवे

मध्याकारविकारसंकरततां तेषां कुतः सत्यता।

निःसत्ये चपले प्रपञ्चनिचये स्वप्नभ्रमे पेशले

शङ्कातङ्ककलङ्कयुक्तिकलनातीतः प्रबुद्धो भव॥ ६॥

इस विश्व के भाववर्ग का इतिहास यह है—हमारे जन्म से पहिले यह था ही नहीं। हमारे उत्पन्न होने से इस की स्थिति सहसा एकाएक हो गई। मध्य दशा में आकर इसका आकार विकार रूप सांकर्य-मिलाप हो गया। अब इसकी सत्यता पर विश्वास ही क्या है? एक दम असत्य, चंचल, विस्तारपुंजमय, स्वप्न की नाई, भ्रान्ति पूर्ण और कोमल ऐसे गुणों वाले इस संसार में भेद-शंका रूप आतंक कालिमा की युक्ति कलनाओं का अतिक्रमण करके सदा अपने स्वरूप में जागृत रहो।

भावानां न समुद्भवोऽस्ति सहजस्त्वद्भाविता भ्रान्त्यमी

निःसत्या अपि सत्यतामनुभवभ्रान्त्या भजन्ति क्षणम्।

त्वत्संकल्पज एव विश्वमहिमा नास्त्यस्य जन्मान्यतः

तस्मात् त्वं विभवेन भासि भुवनेष्वेकोऽप्यनेकात्मकः॥ ७॥

पदार्थों की उत्पत्ति स्वतः नहीं हुई है। तुम्हारी भावना-इच्छा से ही ये प्रकाशित हुए दिखाई दे रहे हैं। असत्य होते हुए भी यह सत्यात्मक अनुभव प्रकाश से ही क्षण-मात्र में स्थैर्य को प्राप्त करते हैं। जब यह बात सिद्ध हुई तो यह विश्व-महिमा तुम्हारी

इच्छात्मक-संकल्प से ही स्थिति को प्राप्त करती है। अन्य द्वारा इसका जन्म नहीं हुआ है। इस धारणा को समक्ष रखकर, तुम ही प्रमेयवर्ग में भासित होकर एक होके भी अनेक रूप बने हो।

यत् सत्यं यदसत्यमल्पबहुलं नित्यं न नित्यं च यत्
यन्मायामलिनं यदात्मविमलं चिदर्पणे राजते।
तत्सर्वं स्वविमर्शसंविदुदयाद् रूपप्रकाशात्मकं
ज्ञात्वास्वानुभवाधिरूढमहिमा विश्वेश्वरत्वंभज ॥ ८ ॥

संसार के विषय में यह विचारना — यह सत्य है, यह असत्य है, भेद-प्रथा के कारण अल्प-फोक है, परमार्थ का उपाय होने से बहुल-महत्त्वपूर्ण है, नित्य है, अनित्य है, माया से मलिन है, आत्म रूप होने से विमल है—ये सभी भावनायें चिद्-दर्पण में ही भासित हो रही हैं (अतः चिद्-दर्पण से भिन्न इनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। बात तो यूँ है—ये सभी भावनायें स्वात्म-विमर्श-संविद् से उदित होकर प्रकाशित हैं। ऐसा जानकर, स्वात्म-अनुभव में टिककर विश्वेश्वर भाव को प्राप्त करो अर्थात् जीवन्मुक्ति का आनन्द भोगो।



शैवदर्शन के वातायन से

प्रो० नीलकण्ठ गुरुद्व

विकल्प— किसी भी पदार्थ के स्वरूप निर्धारण के विषय में दो परस्पर विरोधी कल्पनाओं में से किसी एक अनपेक्षित अर्थात् इन्द्रियज्ञान से सिद्ध न होने वाली कल्पना का अपोहन करके, दूसरी अपेक्षित कल्पना का निश्चय करवाने वाले मानसिक व्यापार को 'विकल्प' कहते हैं। भौतिक स्तर पर चलनेवाला सारा पदार्थ व्यापार केवल विकल्पमय होता है। उदाहरणार्थ—“अमुक पदार्थ कल सा है या कल सा नहीं है” - विकल्प इन दो प्रतिस्पर्धी कल्पनाओं का युगपत् आक्षेप (ग्रहण) करके तत्काल ही दोनों में से किसी एक अनपेक्षित कल्पना का अपोहन करके कलसे

के सद्भाव या असद्भाव का निश्चय करवाता है। शास्त्रीय विवेचन के अनुसार विकल्प के दो स्तर हैं—

- (क) 'विविधा कल्पना = विकल्पः'—अर्थात् किसी भी भौतिक पदार्थ के सद्भाव या असद्भाव के बारे में विविध प्रकार की कल्पना का नाम विकल्प है, और
- (ख) 'विविधत्वेन कल्पितस्य (शङ्कितस्य) कल्पः अन्य व्यवच्छेदनं = विकल्पः'—अर्थात् परस्पर विरोधी, एक से अधिक, कल्पनाओं का विषय बनाए गए पदार्थ के साथ सम्बन्धित अनपेक्षित कल्पनाओं का अपोहन करके अपेक्षित (अर्थात् इन्द्रियबोध से सिद्ध होने वाली) कल्पना का निश्चय करवाने वाले मानसिक व्यापार को विकल्प कहते हैं।

फलतः विकल्प व्यापार हमेशा द्वयापेक्षी (दो विरोधी कल्पनाओं की अपेक्षा रखने वाला) निश्चयज्ञान होता है—द्वयापेक्षी विनिश्चयः (विकल्पः)

उपदेश—

'उप इति सामीप्येन देशना=उपदेशः'—इस शास्त्रीय लक्षण में 'सामीप्य' से निकटतम सम्बन्ध अर्थात् सिद्धगुरु एवं उपयुक्त शिष्य दोनों के आत्मिक अभेद का अभिप्राय है।

साक्षात् परमेश्वर स्वरूप सिद्धगुरु अकस्मात् किसी आंतरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर, किसी विरले, दैवी शक्तिपात के द्वारा पवित्रित अन्तःकरणों वाले और उपदेश दिये जाने की योग्यता वाले शिष्य के साथ आत्मिक तादात्म्य स्थापित करके (अर्थात् उसकी अर्ध प्रबुद्ध चेतना में निजी सुप्रबुद्ध चेतना का, पलक भर में, संक्रमण करके) उसके अंतस् को आत्मज्ञान की ज्योति से आलोकित कर लेता है। इसी को परिभाषा में 'उपदेश' कहते हैं। शास्त्रवचन भी इस प्रकार है—

“शक्तिपातवशाद्देवि नीयते सद्गुरुं प्रति।
दीयते परमं ज्ञानम्॥”

उपदेश्य—

सिद्ध गुरुजनों की अन्तर्दृष्टि में उपदेश दिये जाने के लिए उपयुक्त पात्र बने हुए शिष्य को 'उपदेश्य' कहा जाता है। शिष्य की उपयुक्तता के बारे में कुछेक बातें इस प्रकार हैं—

१. वह परमेश्वर के विशेष अनुग्रह का पात्र बना हो (यह सब से मुख्य आवश्यक बात है),
२. उसके अंतस् में प्रतिभा का उदय हुआ हो,
३. उसमें सांसारिक प्रलोभनों के प्रति पूर्ण विरक्ति का भाव उदित हुआ हो,
४. राजसिक एवं तामसिक वृत्तियों का बहिष्कार करने से उसका अंतस् सात्त्विक प्रकाश से आलोकित हुआ हो,
५. उसके मन में काम, क्रोध, लोभ, स्वार्थ, वैरभाव, ईर्ष्या, राग, द्वेष, अहंकार इत्यादि कुत्सित वृत्तियों का शमन हुआ हो, और
६. उसके अंतस् में आत्मिक रहस्य को जानने की तीव्रतम इच्छा का उदय हुआ हो। इत्यादि।

प्रकाश— इस शब्द से अनादि, असीम एवं सर्वव्यापी चित्-प्रकाश का अभिप्राय है। प्रकाश ही परमशिव है। सारे शास्त्र इसी की व्याख्या हैं।

प्रकाश्य— जो कोई भी पदार्थ स्वयं प्रकाशमान न होकर किसी दूसरी प्रकाशमयी सत्ता के प्रकाश से प्रकाशित होता हो—अर्थात् स्वरूपसिद्धि के लिए परमुखापेक्षी हो 'प्रकाश्य' कहा जाता है। परमशिव को छोड़कर अन्य सारा प्रपञ्च 'प्रकाश्य' है।

प्रत्यवमर्श— यह शब्द 'प्रति+अवमर्श' इन दो शब्दों का संयुक्त रूप है। साधारण रूप में इस संयुक्त शब्द से अन्तर्मुखीन 'अहंविमर्श' का अभिप्राय है।

व्यवच्छेद— भौतिक स्तर पर अलग अलग पदार्थों में दृष्टिगोचर होने वाले पारस्परिक अलगाव और संयुक्त रूप में सबों का मौलिक शिवभाव से पार्थक्य को व्यवच्छेद कहते हैं।

व्यवच्छेद्य— पग पग पर व्यवच्छेदों और देश, काल एवं आकार की इयत्ताओं का विषय बनाए जाने वाले समूचे प्रमेय-विश्व को व्यवच्छेद्य कहा जाता है।

अनुसन्धान— किसी पदार्थ के प्राथमिक साक्षात्कार की वेला के ज्ञान (अर्थात् अनुभवज्ञान), और उसी पदार्थ के, उसी रूप वाले, स्मृतिज्ञान दोनों का विमर्शमय एकीकार 'अनुसन्धान' कहलाता है।

निर्मातृता— निर्माण करने के स्वयंसिद्ध स्वभाव को निर्मातृता कहते हैं। परप्रकाशमय प्रमाता, अपनी इच्छाशक्ति के सामर्थ्य से, अपने प्रकाश के छोटे से अंश को, स्वरूप से ही अलगाकर, बाहरी स्थूलातिस्थूल प्रमेय विश्व के रूप में अवभासित करते हैं—इसी स्वाभाविक क्रियात्मकता को परमपुरुष की 'निर्मातृता' कहते हैं।

स्वरूप विप्रलोप—जागतिक स्तर पर किसी प्रकार की उपाधि या किसी दूसरे कारण से पदार्थों के अपने असली रूप का विपर्यय या पूरा तिरोधान हो जाता है—ऐसी स्थिति को 'स्वरूप विप्रलोप' कहते हैं। उदाहरणार्थ सफेद पट को लाल रंग से रंगने पर उसके असली श्वेतवर्ण का विपर्यय या तिरोधान हो जाता है। स्वरूप-विप्रलोप का विषय बनने वाला पदार्थ पूर्ण, नित्य एवं व्यापक नहीं हो सकता है। परमशिव परिपूर्ण, नित्य एवं सर्वव्यापी अस्तित्व है अतः उसके स्वरूप का विप्रलोप किसी भी अवस्था में नहीं होता है।

षड्भावविकार—“उत्पन्न होता है, वर्तमान है, बढ़ रहा है, परिणत हो रहा है, क्षीण होता जा रहा है, नष्ट होता है”—इन छः विकारों को षड्भावविकार कहते हैं। हरेक पदार्थ उत्पन्न होने से लेकर नष्ट होने तक इन भावविकारों का विषय बन जाता है। चित्प्रकाश नित्य होने के कारण इन विकारों से परे है।

परमार्थसत्— जो सद्भाव अविनश्वर और अटल हो उसको परमार्थसत् कहते हैं।

संवृतिसत्— जो सद्भाव विनश्वर और परिवर्तनशील हो उसको संवृतिसत् कहते हैं।

वस्तुसत्— परमार्थसत् को ही पर्याये रूप में वस्तुसत् भी कहते हैं।

दुर्घटकारि— जो कार्य मानव भूमिका पर किसी भी चेतन प्रमाता के द्वारा संभव न हो उसको दुर्घट कार्य कहते हैं। दुर्घट कार्य से विश्व का बहिरंग अवभासन और अंतरंग संहार का अभिप्राय लिया जाता है क्योंकि यही ऐसा कार्य है जो किसी भी सांसारिक प्रमाता के द्वारा निष्पन्न नहीं हो सकता है। ऐसे दुर्घट कार्य को कर सकने वाले परमशिव प्रमाता को परिभाषा में 'दुर्घटकारि' कहते हैं।

महेशानत्व— महेशानत्व शब्द शिवत्व अथवा परमेश्वरता के अभिप्राय को द्योतित करता है। सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान एवं अनुग्रह इन पांच दुर्घट कार्यों को संपन्न

कर सकने की लोकोत्तर क्षमता ही परमशिव का महेशानत्व है।

ग्रहोपरागकाल—जिस वेला पर सूर्य या चन्द्रमा को ग्रहण लग जाता है उसको ग्रहोपरागकाल कहते हैं।



अभ्यास' च्य ज़रम' सतम

सुश्री शारिकादेवी जी

त्वह्यि मा ङ्चूठोन श्याम सु'न्दरय त्वह्यि मा ङ्चूठोन श्याम सु'न्दरय।

युस हय न्यबर सुय, मन्यि अ'न्दरय

अथस छस मुरली, न'ल्य पीताम्बर

चंचल ने' थर, नाव मुरलीधर

मुरली स'त्यन मुह रावनय॥

त्वह्यि मा०,

ब्रच्च म्यानि गूपी न्यूख छ'ल-र' विथ

दूरान दूरचव घरबार त्र'विथ

घर छिस सॅरयी छुस न कुन्यि घरय॥

त्वह्यि मा०,

दिवकी वसुदीव प्राणापानय

दीह म्योन आसवुन छु जेलखानय

मध्यस मंज जाव कृष्ण गु'न्दरय

त्वहि मा, ङ्चूठोन श्याम सु'न्दरय

युस हय न्यबर सुय, मन्यि अ'न्दरय

त्वहि मा ङ्चूठोन श्याम सु'न्दरय॥

जन्माष्टमी

साधना के आईने में

प्रो० मखनलाल कुकिलू

क्या सखि ! देख्यौ कहीं नन्दराय?
बाहर प्रकट भये जो जगमें,
तनमें वही समाय ॥

क्या सखि०,

करमुरली ओढ़े पीताम्बर
चपल नयन हैं मोहक चाल
भवविख्यात नाम मुरलीधर
वंशीराव सबै इतराय।

क्या सखि०,

बनी गोपिका करणवृत्तियां
भरमा गई श्रीनन्ददुलार?
अन्तःपुर त्यजकर उसने फिर
गह्यो विदूरदूरतम धाम
है सर्वालयवासी जो विभु
निर्निकेतन और अकाय।

क्या सखि०,

प्राणापान, वसुदेव देवकी
देह मेरी है कारागार
मध्यधाम में उदित हुए तब
कुञ्जबिहारी राधाराय।
क्या सखि ! देख्यौ कहीं नन्दराय।

साधना संकेत

श्यामसुन्दर—संवित्धाम
न्यबर अन्दर—उन्मेष निमेष

मुरली—जागतिक पदार्थ
 पीताम्बर—वैराग्यभाव
 चंचलनेत्र—मोहमाया
 व्रज—इन्द्रियवृत्तियां
 देवकी वसुदीव—प्राण और अपान
 शरीर—कैदखाना
 मध्यस—मध्य धाम में



“पथ-लक्षण”—अभिनवगुप्ताचार्य की दृष्टि में

सुश्री प्रभादेवी जी

१३-११-१९७१ का वर्ष था। गुरुवर्य ईश्वर-स्वरूप जी महाराज हमें सामुदायिक रूप में तन्त्रालोक का पांचवां आह्निक, जो आणवोपाय में वर्णित प्राणापान से संबन्धित है, पढ़ाते थे। इस आह्निक का पांचवां प्रमेय पथ-लक्षण है। इस विषय का निर्णय अभिनवगुप्त जी ने बड़े मार्मिक रूप से किया है। वे कहते हैं कि भैरवी-मुद्रा में प्रविष्ट होने के क्षण में साधक को किन-किन अवस्थाओं का अनुभव होता है, उन्हीं अवस्थाओं का निर्णय इस ‘पथ-लक्षण’ प्रमेय में करेंगे।

वैसे मालिनी-विजय तन्त्र में “आनन्दः उद्भवः कंपः निद्रा घूर्णिश्च पंचमः” जो श्लोक कहा है उसी का लक्षण तथा स्वरूप अभिनवगुप्त जी ने इसी आह्निक के सौवें श्लोक के अर्धभाग से लेकर एक सौ छः श्लोकों तक वर्णित किया है। वे श्लोक ये हैं:—

अत्र भावनया देहगतोपायैः परे पथि॥ १००॥

विवक्षोः पूर्णतास्पर्शात्प्रागानन्दः प्रजायते।

ततोऽपि विद्युदापातसदृशे देह वर्जिते॥ १०१॥

धाम्नि क्षणं समावेशादुद्भवः प्रस्फुटं प्लुतिः

जलपांसुवदभ्यस्तसंविदेहैक्यहानितः॥ १०२॥

स्वबलाक्रमणाद्देहशैथिल्यात् कम्पमाप्नुयात्।

गलिते देहतादात्म्यनिश्चयेऽन्तर्मुखत्वतः॥ १०३॥

निद्रायते पुरा यावन्न रूढः संविदात्मनि।

ततः सत्यपदे रूढो विश्वात्मत्वेन संविदम्॥ १०४॥

संविदन् घूर्णते घूर्णिर्महाव्याप्तिर्यतः स्मृता।

आत्मन्यनात्माभिमतौ सत्यामेव ह्यनात्मनि॥ १०५॥

आत्माभिमानो देहादौ बन्धो मुक्तिस्तु तल्लयः।

आदावनात्मन्यात्मत्वे लीने लब्धे निजात्मनि॥ १०६॥

आत्मन्यनात्मतानाशे महाव्याप्तिः प्रवर्तते।

इन ऊपर-वर्णित श्लोकों का भाव यह है—भैरवी-मुद्रा की उपासना में शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध पर पुनः पुनः अभ्यास करने से शाक्तोपाय के द्वारा प्रमातृधाम में प्रविष्ट होने के इच्छुक साधक को अहंपरामर्श के केवल स्पर्श-मात्र से आत्यन्तिक आनन्द का अनुभव होता है, जिस के फलस्वरूप वह जान जाता है—मैं आनन्द रूप हूँ।

इस भांति आनन्द का अनुभव करके इस अवस्था में जैसे बिजली की कौंध के समय अन्य पदार्थ न दिखकर केवल प्रकाश ही चारों ओर भासित होता है उसी भांति इस धाम में भी देहाभास का तनिक भी अनुभव न होकर केवल आनन्द का ही अनुभव होता है। इस अवस्था में क्षण-मात्र समावेश होने से ऊर्ध्व-गमन होता है। इसे प्लुति यानी 'उद्भव' कहते हैं।

जैसे (मलिन) जल में अवस्थित धूलि आदि को निकालने से जल स्वच्छ, निर्मल हो जाता है वैसे ही स्वरूपलाभ के समय भेद-प्रथात्मक देहाभास के नष्ट होने से तथा चित्त-बल का आश्रय लेने से इस साधक को 'कंप' नामक अवस्था का अनुभव होता है।

इस अवस्था में जाकर इस का देहाभिमान तो काफूर होता है किंतु इस संवित्-धाम में पूर्णरूप से रूढ नहीं हुआ होता है अतः वह 'योग-निद्रा' में चला जाता है।

इसके बाद सत्य-पद में आरूढ बना हुआ साधक विश्वात्म रूप से संवित् का अनुभव करने से आनन्द में झूमने लगता है। इसे 'घूर्णि' कहते हैं और यही 'महाव्याप्ति' कहलाती है।

अब ऊपर-वर्णित अवस्थाओं के विषय में प्रश्न उपस्थित होता है—जब साधक के लिए 'चिञ्चिनी' आदि दस अवस्थाओं के प्राप्त करने पर, परम-सिद्धि की प्राप्ति होती है तो यहां केवल पांच सिद्धियों का ही वर्णन क्यों किया गया। इस शंका का समाधान करते हुए आचार्य जी कहते हैं—चिञ्चिनी आदि अवस्थाओं का अन्तर्भाव इन्हीं पांच अवस्थाओं में होता है।

आत्मा पर अनात्म अभिमान यानी मैं आत्मा नहीं हूं तथा अनात्मा जड़ शरीर पर आत्म-अभिमान यानी शरीर ही मैं हूं—इन दो प्रकार के अभिमान का होना बन्धन-संसार का कारण है और इससे छुटकारा पाना ही मुक्ति है। जब इस प्रकार के दोनों मलों का नाश हो जाता है तो महाव्याप्ति की प्राप्ति होती है।

इन श्लोकों की व्याख्या करते हुए हमारे गुरुवर्य ने कहा—उपासना-क्रम के संसार में भी दो प्रकार का बन्धन माना है—एक तो तथ्य आत्म-चेतनता पर आत्म-अभिमान का न होना और दूसरा शरीर को ही आत्मा मानना। इसी को आणव-मल कहते हैं। विज्ञानाकल अवस्था में भी इसी मल के कारण दो अवस्थाओं का अनुभव होता है। एक तो स्वरूप-साक्षात्कार की प्राप्ति साधक को होती है किंतु उस में वह हाथ, पैर हिलाने की क्रिया नहीं कर पाता और दूसरी अवस्था में सभी क्रियायें तो कर पाता है, किंतु स्वरूप-साक्षात्कार के आनन्द से वंचित रहता है। ऐसा तभी होता है जब साधक को आणवमल का संस्कार बीज रूप से ठहरा होता है। इन भावों का प्रदर्शक यह श्लोक है :—

स्वातन्त्र्यहानिर्बोधस्य

स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता।

द्विधाणवं मलमिदं

स्वस्वरूपापहानितः॥ (ई० प्र० ३/२/४)

इसी आणवमल की निवृत्ति के लिए शिवस्तोत्रावली के तेरहवें स्तोत्र के दूसरे श्लोक में उत्पलदेवजी अपनी विवशता का रोना रोते हैं:—

अन्तरप्यतितरामणीयसी

या त्वदप्रथनकालिकास्ति मे।

तामपीश परिमृज्य सर्वतः

स्वं स्वरूपममलं प्रकाशय॥ (उत्पल० १३-२)

वे कहते हैं—हे प्रभु! आप (चित्-स्वरूप) को छुपा रखने वाली मलिनता-अज्ञान, चाहे वह अत्यन्त सूक्ष्म भी क्यों न हो जो मेरे चित्त में (आप के स्वरूप-साक्षात्कार के समय) होती है उस को भी पूर्ण रूप में हटाकर अपने (चिदानन्दमय) निर्मल स्वरूप को प्रकट कीजिए।

इस अवस्था को समक्ष रखकर टीकाकार जयरथ जी शंका करते हैं कि उस आणवमल की समाप्ति एकबारगी होती है या क्रम-पूर्वक।

इस का समाधान करते हुए आचार्यवर्य कहते हैं:—

प्रथम तो देह को आत्मा, मानने का अज्ञान नष्ट होता है तब फिर अपने तात्त्विक स्वरूप के प्राप्त होने पर आत्मा पर अनात्म भावना समाप्त हो जाती है। इसी अवस्था को महाव्याप्ति या शिव-व्याप्ति भी कहते हैं। इसका अनुभव साधक को करामलकवत् हो जाता है।

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए गुरुमहाराज जी ने आवेश में आकर अनुभव के आधार पर प्रसंगवश कहा—जब साधक के प्राणापान का प्रवेश सुषुम्नाधाम में होता है तो वह एकबारगी बड़े वेग से होता है, धीरे-धीरे नहीं होता। इस समय निम्न श्लोक की सार्थकता का अनुभव होता है:—

“चन्द्राग्निरविनक्षत्रैर्भुवनानि चतुर्दश।

क्षिप्तोदरे तु या देवी विषमूढेव सा गता॥

इस श्लोक का अर्थ करते हुए कहा—कुंडलिनी शक्ति में चंद्र, अग्नि, सूर्य संपूर्ण तारागण तथा चौदह भुवनों का वास होता है। जब यह जागृत होती है तो योगी को सर्वाधिपत्य का अनुभव आनन्दातिरेक से युक्त होता है। वैसे सभी प्राणियों में यह विष से मूर्च्छित बनी हुई सी रहती है।

गुरुवर्य ने इस प्रसंग को कहते हुए सभी शिष्यों को सचेत करते हुए कहा—इसी कुंडलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए तुम सभी मेरी शरण में आये हो। अतः सभी जागतिक ईर्षा द्वेष आदि विकारों को त्याग कर सदा अभ्यास-परायण रहने से तुम्हारी आत्मिक चेतनता तुम में प्रस्फुरित होगी और मेरा गुरुत्व भी सफल होगा।

इस कथन की पुष्टि में गुरुवर्य ने यह श्लोक कहा था :—

भूम्यादौ तत्त्वजाले नहि भवति वपुस्तादृशं यत्प्रमातुः

सविद्विश्रान्तिवन्ध्यं स्फुरति स बहुधा मातृभावोऽस्य यस्मात्।

तेनास्मिन्वेद्यजाले क्रमगतकलनां निर्विकल्पामहन्ता
स्वातन्त्र्यामर्शसारां भुवमधिवसत प्राप्नुत स्वात्मसत्ताम्॥

पृथ्वी, जल, आकाश आदि छत्तीस तत्त्वों के विस्तृत आवरण में, प्रमाता का जो वास्तविक आत्म-स्वरूप है, वह नहीं पनपता है—कारण यह—संवित्-धाम में टिकने के बिना यह अनेकों रूप से विकसित है। अतः इस वेद्य-जाल के बखेरे में ही अक्रम-पद में ठहरी हुई निर्विकल्पता की जिस का सारभूत-स्वरूप, स्वातन्त्र्य परामर्श है भूमि पर ठहरो और उसी अपनी स्वात्म-सत्ता की अवस्था को (तुम सभी) प्राप्त करो।

यह श्लोक कहकर फिर यह निम्न श्लोक भी पढ़ा—

भोः भोः शक्र ! त्वया स्वस्यां
दिशि विघ्नप्रशान्तये।
सावधानेन कर्मान्तं
भवितव्यं शिवाज्ञया॥

हे इन्द्र! तुम भगवान् शिव की आज्ञा से, विघ्नों का शमन करने के लिए, अपनी इन्द्र दिशा में सजग रूप से अपने कर्मों का पालन करो।

महाराज जी ने यह श्लोक तो इन्द्र के विषय में कहा किन्तु वास्तव में उनका अभिप्राय अपने शिष्यों को सचेत करने का ही था। सभी व्यवहार करते हुए अपने परामर्श से विमुख न बनो। यही गुरु-मंत्र का सार-तन्त्र है।

इस के साथ ही यह लेख समेट रहे हैं।



Whenever you find out what is the real state of Bhairava, you can't find it out, because the real state of Bhairava is in fact the real state of the knower, the perceiver. It is not perceived. When there is desire in you to perceive it, you can perceive it when it comes down to the state of Bhairavi, when you tread on the level of Pārvaṭī then you are treading on the right path. There is no journey in the field of Bhairava. He is the knower of everything. So he can't be found. That state can only be found when it comes down one step lower, i.e. at the level of Pārvaṭī.

(Svāmī Lakṣmaṇ Joo Mahārāj)

जीवनी साहित्य—

दूर होके भी जो मेरे संग संग रहते हैं
दिल में धड़कन बने जो पल पल धड़कते रहते हैं।

सद्गुरु गाथामाला का पहला मनका

प्रो० मखनलाल कुकिलू

सहोदराः कुङ्कुम केसराणां
भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्ट-
स्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥

कुङ्कुम व वाग्विलास का उत्पत्ति-स्थान, 'शारदादेश'—महाकवि बिल्हण की गौरवमय उक्ति का सर्वस्व, ज्ञान-विज्ञान की पराकाष्ठा का उच्चतम केन्द्र, प्रसिद्ध प्राचीन शिक्षा केन्द्र तक्षशिला और नालन्दा के समकक्ष, देवी शारदा (सरस्वती) का क्षेत्र व आवास-स्थान शारदापीठ के अन्यतम नाम से विख्यात, 'सर्वज्ञ' उपाधि वितरण का गौरव रखने के कारण 'श्रीपीठ' कहा जाने वाला कश्मीर प्रदेश अनादिकाल से असंख्य ऋषियों, सन्तों, सूफियों, दार्शनिकों, विद्वद्वरों, लेखकों, आलंकारिकों व इतिहासकारों का उद्गम स्थान रहा है। "ऋष्य व'अर" अर्थात् ऋषिवाटिका कश्मीरधरा का कण कण कश्यप ऋषि के अचूक प्रभाव से प्रभावित रहा है। इस रहस्यमयी स्वर्गस्थली के अनाघात पुष्पों की महक से आकर्षित होकर न केवल देव पुरी का देव समाज लालायित होने लगा अपितु शिवलोक के पार्षद भी अपनी प्राचीन शैवी परम्परा का पुनरुद्धार करने के लिए ऊर्ध्वरेता दुर्वासा ऋषि को भैरवतन्त्रों के प्रचार व प्रसार का कार्यभार सौंपकर आनन्दमग्न हुए। इसी ऋषि दुर्वासा से परम्परा के रूप में मानस पुत्र-पुत्रियों का क्रम पन्द्रह सिद्धों तक चलता रहा जिन्होंने कश्मीर शैवदर्शन का लुप्तप्राय रूप उजागर किया। शैवशास्त्रज्ञ संगमादित्य पहले गृहस्थी थे जिनके वंशज सोमानन्द हैं, जो प्रत्यभिज्ञा दर्शन शाखा के आविर्भावक तथा प्रसिद्ध शैवग्रन्थ "शिवदृष्टि" के कर्ता हैं। सोमानन्द से ही इस क्षेत्र में पहिली बार गुरु-शिष्य परम्परा का श्रीगणेश हुआ और उनके शिष्य "शिवस्तोत्रावली" के रचयिता 'उत्पलदेव' थे। उत्पल देव के शिष्य लक्ष्मणगुप्त थे और लक्ष्मणगुप्त शैवकेसरी अभिनवगुप्त के गुरु थे। अभिनव

गुप्त के शिष्यों में श्री क्षेमराज जी प्रधान थे और क्षेमराज के प्रधानशिष्य योगराज थे। कश्मीर की सुरम्य घाटी में दैवी प्रकोप के कारण लहलहाती हुई यह शैवीपरम्परा पुनः उस समय तक रुक पड़ी जब तक तत्त्वज्ञानी श्री “मनकाक मुन्गा” यहां अवतरित हुए। इन्हीं के प्रधान शिष्य महान् शैवाचार्य स्वामी राम जी थे। स्वामी राम जी के शिष्य सिद्धयोगी ब्रह्मचारी श्री महताब काक जी थे और श्रीमहताब काक जी के प्रधान शिष्य हमारे प्राणप्रिय आदरणीय सद् गुरु महाराज, ईश्वर-स्वरूप श्री लक्ष्मण जी थे। इस प्रकार गुरु-शिष्य परंपरा के रूप में अवतरित पर-भैरव स्वरूप शैवयोगी श्रीलक्ष्मण जी महाराज का अपना एक अनिर्वचनीय व्यक्तित्व है।

श्री लक्ष्मण जी सौम्य सन्त थे साधु नहीं थे। देखने में साधु और सन्त में कोई फर्क नहीं पर बारीकी से देखा जाय तो दोनों में अन्तर है, तभी तो तुलसीदास जी ने भी लिखा है कि “साधु संत के तुम रखवारे”। वे कहते हैं कि साधु का चरित्र कपास के फूल के समान होता है जो रसहीन, गन्धहीन होते हुए भी अधिक उपयोगी होता है। अतः साधु एक व्यवस्था का, एक व्यक्ति का नाम है। परन्तु संत एक प्रकृति का नाम है जो एक दायरे के अन्दर रहता है। स्त्री व पुरुष दोनों संत हो सकते हैं। संत कामवासना से परे होता है। उसके पास बैठने से विचारों में बदलाव आता है, हृदय परिवर्तित होता है और आत्मिक सुख मिलता है। इसीलिए रामचरितमानस में लिखा है—

“प्रथम भक्ति संतन करि संगी दूसरी रति मम कथा प्रसंगा॥

अर्थात् प्रथम भक्ति तो सन्तों का समागम है यदि वह भाग्य में न लिखा हो (क्योंकि संतों का समागम कई जन्मों के पुण्यों का परिणाम होता है जिसके लिए गुरु की कृपा अनिवार्य है) तो शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। इस कथन के आधार पर सन्त की महिमा अपार है। हमारे गुरु महाराज सन्त प्रकृति के इन्ही सौम्यगुणों से अलंकृत थे। स्वामी जी महाराज के सौम्यजीवन पर खगावलोकन करने से यह बात स्पष्ट होती है कि ये शैशवावस्था से ही पराशक्ति के वैभव का साक्षात्कार करने के लिए उत्सुक थे। इसीलिए तीन वर्ष की आयु में वे मिट्टी के ढेलों को शिवलिंग का आकार प्रदान कर, तोतीली भाषा में “पूजाये-पूजाये” अर्थात् ‘पूजा करता हूं-पूजा करता हूं’, कहा करते थे। इतना ही नहीं कि वे जब सरकारी स्कूल में पहिली जमात में दाखिल हुए तो वे अपने साथ अपना ‘आसन पट्ट’ बैठने के लिए लेते थे और उसी पर अपनी कक्षा में आंखें मीचकर बैठा करते थे। कक्षा प्राध्यापक के पूछने पर कि वे आंखें मीच कर क्या देखते हैं? तो बालक लक्ष्मण ने सहज स्वभाव में उत्तर दिया कि संसार में जो सबसे बड़ा है, वे उसी को आंखें बन्द करके देखते हैं। एक बार बालक लक्ष्मण जी अपने पिता श्री नारायण जूरैणा के साथ कलकत्ता जाने

के लिए रेल यात्रा करते समय गलती से निषिद्ध डिब्बे में जा घुसे। वहां बैठकर बालक की आंख लगी और ये समाधिस्थ हो गये। पिताश्री विवश होकर वहीं खड़े थे कि अचानक रेल निरीक्षण कर्मचारी के द्वारा वे वहां से निकाले गये और निरीक्षक महोदय बालक के पास तब तक खड़े रहे जब तक वे समाधि से बाहर आये और उन्हें विधिवत् प्रणाम करके अपने पिताश्री के पास ले चले। बाल्यावस्था की एक और घटना का उल्लेख करना असमीचीन नहीं होगा कि अपनी कथा में एक दिन वे मग्न बैठे थे कि इतने में व्यायाम की घण्टी बजी कथा के सारे छोटे-छोटे बच्चे जब उठ खड़े हुए तो बालक लक्ष्मण ने इन्हें व्यायाम के स्थान पर अभ्यास करने के लिए उकसाया। कक्षा में खलबली को देखकर अध्यापक से न रहा गया और वे अनुशासनहीनता के लिए दोषी बालक लक्ष्मण को सोटी से पच्चीस बार प्रहार कर बैठे। बालक लक्ष्मण रोता हुआ घर लौटा पर अध्यापक की तबीयत निढ़ाल हुई और वे बराबर पच्चीस दिन तक बुखार से ग्रस्त रहे। इस नियत अवधि के पश्चात् जब अध्यापक महोदय ने कक्षा में कदम रखा तो सबसे पहले बालक लक्ष्मण को अनुनय-विनय किया और अपनी गलती के लिए उनसे माफी मांगी क्योंकि उन्होंने बालक लक्ष्मण के प्रभाव को बखूबी समझा था। पांच साल की आयु में बालक लक्ष्मण की साधना में और अधिक बदलाव आया था। वे सुबह-शाम चौकड़ी मार कर बैठते थे। कभी आंखें मूंदे हुए ही जमीन पर गिरते थे और कभी घबराहट के साथ चौंक उठते थे। माता 'अरण्यमाली' अपने बच्चे की इस अद्भुत अवस्था को देखकर घबरा उठी और अपने पति को साथ लिये कुल पुरोहित स्वामी रामजी के पास अपनी मनोव्यथा जतलाने के लिए चली। स्मरण रहे कि स्वामी राम जी गृहस्थी सिद्ध योगी थे। इनका जन्म काज़ीयार हब्बाकदल श्रीनगर (कश्मीर) में पं० शुकदेव जी महाराज के यहां पौष कृष्ण द्वादशी सन् १८५५ में हुआ था। श्री ईश्वर साहिब इनके चाचा थे। वे भी महान् सिद्धयोगी थे। उनसे ही प्रेरणा पाकर स्वामी राम जी बाल्यकाल से ही अनुत्तर मार्ग की ओर प्रवृत्त हुए। सिद्ध साधक होने के नाते इन्होंने अपने चमत्कारों से सबों को आश्चर्यचकित किया था। इनकी वैराग्यभावना उस समय चरम सीमा पर पहुंची जब इनका कुटुम्ब आकस्मिक दैवी-प्रकोप का शिकार हुआ। अपने जीवन के अन्तिम सुनहरी वर्षों में ये साक्षात् शिवस्वरूप ही दिखते थे और एक मास पूर्व ही अपनी मृत्यु का दिन तथा समय बताकर सन् १९१५ में माघकृष्णचतुर्दशी को स्वर्गधाम को सिधारे।

क्रमशः



What is Dhyāna ?

Meditation (dhyāna) is verily an unwavering awareness, formless and without support. Meditation does not consist in imaginative visualisation on the body (of the deity) with organs, face, hands etc.

Meditation means when your intellectual awareness becomes one pointed and attached to formlessness and supportlessness. If you contemplate with support, for example - meditate with support is just to meditate between the two breaths or to meditate between the two eyebrows, just to meditate between one point and another point. This is meditation without any support. Just take hold of that point finished. Maintain awareness there. That is dhyāna, that is the real meditation. That is the real contemplation.

(Svāmi Lakṣmaṇ Joo Mahārāj)



FROM ASHRAM DESK

NOTIFICATION

Subject : Amendment to the Rule & Regulations

Reference : Decision dated 2.2.97 of the Board of Trustees.

The words "during January, June and October each year respectively" appearing in amended Rule 16 (sub-para 2) of the Rules and Regulations shall be deemed to have been deleted with effect from 1st January, 1997.

By order of the Board of Trustees.

(B.N. Kaul)

Trustee

For and on behalf of Secretary,
Ishwar Ashram Trust.

CALENDAR OF FESTIVALS OF ISHWAR ASHRAM TRUST (1997-1998)

April 8, 1997	(Tuesday)	-NAVREH (1st Navratra)
May 4, 1997	(Sunday)	-Janma Divas Jayanti of Ishwar Svaroop Swami Ji Mahāraj.
May 9, 1997	(Friday)	-Varsha of Ishwar Svaroop Swami Ji Maharaj.
July 20, 1997	(Sunday)	-Guru Purnima (Ashad Purnima)
August 18, 1997	(Monday)	-Shrawana Purnima
August 24, 1997	(Sunday)	-Janma Ashtami
Sept. 18, 1997	(Thursday)	-Pitra-pakṣh Jag of Swami Mehtab Kak Ji Maharaj.
Sept. 18, 1997	(Thursday)	-Pitra-paksh Jag of Sushri Sharika Devi Ji
Sept. 19, 1997	(Friday)	-Varshik Jag of Ishwar Svaroop Swami Ji Maharaj.
Sept. 30, 1997	(Tuesday)	-Pitra-paksh Jag of Swami Ram Ji Maharaj.
Nov. 4, 1997	(Tuesday)	-Janma Divas Jayanti of Swami Mehtab Kak Ji.
Dec. 1, 1997	(Monday)	-Janma Divas Jayanti of Sushri Sharika Devi Ji.
Dec. 26, 1997	(Friday)	-Janma Divas Jayanti of Swami Ram Ji Maharaj.
Jan. 26, 1998	(Monday)	-Varshik Jag of Swami Ram Ji Maharaj.
Feb. 14, 1998	(Saturday)	-Varshik Jag of Sushri Sharika Devi Ji.
Feb. 24, 1998	(Tuesday)	-Shivratri
Feb. 28, 1998	(Saturday)	-Varshik Jag of Swami Mehtab Kak Ji Maharaj

Sd/-
Secretary
Ishwar Ashram Trust

Published for general information.

ईश्वर-आश्रम महोत्सव तिथिसूची - १९९७-९८

१. नववर्षारम्भ	मंगलवार	अप्रैल ८, १९९७
२. सद्गुरु जन्मदिवस जयंती	रविवार	मई ४, १९९७
३. सद्गुरु वर्षमहोत्सव	शुक्रवार	मई ९, १९९७
४. गुरुपूर्णिमा	रविवार	जुलाई २०, १९९७
५. श्रावणपूर्णिमा (रक्षा बन्धन)	सोमवार	अगस्त १८, १९९७
६. जन्माष्टमी	रविवार	अगस्त २४, १९९७
७. पितृ पक्ष जग (यज्ञ) स्वामी महताबकाक	गुरुवार	सितम्बर १८, १९९७
८. पितृ पक्ष जग (यज्ञ) सुश्री शारिकादेवी जी	गुरुवार	सितम्बर १८, १९९७
९. वार्षिक जग (यज्ञ) ईश्वर स्वरूपजी महाराज	शुक्रवार	सितम्बर १९, १९९७
१०. पितृपक्ष जग (यज्ञ) स्वामी रामजी महाराज	मंगलवार	सितम्बर ३०, १९९७
११. जन्मदिवस जयन्ती स्वामी महताबकाकजी	मंगलवार	नवम्बर ४, १९९७
१२. जन्मदिवस जयन्ती सुश्री शारिकादेवी जी	सोमवार	दिसम्बर १, १९९७
१३. जन्मदिवस जयन्ती स्वामी रामजी महाराज	शुक्रवार	दिसम्बर २६, १९९७
१४. वार्षिक जग (यज्ञ) स्वामी रामजी महाराज	सोमवार	जनवरी २६, १९९८
१५. वार्षिक जग (यज्ञ) सुश्री शारिकादेवी जी	शनिवार	फरवरी १४, १९९८
१६. शिवरात्रि	मंगलवार	फरवरी २४, १९९८
१७. वार्षिक जग (यज्ञ) स्वामी महताब काक जी	शनिवार	फरवरी २८, १९९८

सचिव
ईश्वर आश्रम ट्रस्ट

*Shelter in
harmony with nature*



HUDCO provides options.

Show your concern. Join the environment-friendly sustainable shelter movement.

Contact any of the nearest 450 Building Centres or HUDCO office.

Eco-friendly, appropriate, durable, energy saving aesthetically pleasing and cost-effective Building Materials for :

- Innovative housing in urban and rural areas throughout India.
- Hudco encourages use of locally available resources and waste materials such as fly ash, rice husk, coconut pith, agri-waste, wood waste, sisal, coir & glass fibre, clay, gypsum, mud, sand, lime, stone, bamboo etc. and indigenous construction techniques with emphasis on creating clean, green and healthy built environment.



Housing & Urban Development Corporation Ltd.
HUDCO Bhawan, India Habitat Centre, Lodhi Road,
New Delhi-110003 Tel: 4615343 Fax (011) 4625308